

* आचारांग सूत्र *

(गुजराती छायानुवाद का हिन्दी अनुवाद)

‘नें व सयं लोगं अत्रमाइक्खेज्जा’ ।

मनुष्य दूसरे जीवों के प्रति असावधान न रहे । सूत्र १-२०

— मूल गुजराती संपादक —

गोपालदास जीवाभाई पटेल

कीर्त सवन् २४६४]

[इस्वी सन १९३८]

मूल्य ६ आना

श्री हंसराज जिनागम विद्याप्रचारक फंड समिति .∴ ग्रंथ चौथा

इस ग्रंथमालासे प्रकाशित अन्य ग्रन्थ—

	मूल्य	पोस्टेज
१ श्री उत्तराध्ययनजी सूत्र पृष्ठ ५०० पक्की जिल्ड	१)	०।
२ श्री दशवैकालिक सूत्र ,, २५० ,,	।=)=
३ श्री सूत्रकृतांग सूत्र ,, १६० ,,	।=)=

प्रकाशक—

श्री श्वे. स्थानकवामी जैन कॉन्फरन्स

९ भांगवाडी. वम्बई २.

प्रथम आवृत्ति]

.∴

[२००० प्रति

वि. सं १९९४

मुद्रक :

हर्षचंद्र कपुरचंद दोशी न्यायव्याकरणार्थ

श्री सुखदेव सहाय जैन कॉन्फरन्स प्रि प्रेस.

६ भांगवाडी, वंबई नं. २

आमुख

श्री हंसराज जिनागम विद्या प्रचारक फंड ग्रंथमाला का यह चतुर्थ पुष्प जनता की सेवामें प्रस्तुत है। तीसरे पुष्प के आमुख में सूचित किये अनुसार यह पुस्तक भी 'श्री आचारांग सूत्र' का छाया अनुवाद है। मूल ग्रंथ के विषयो का स्वतंत्र शैलीसे इसमें सम्पादन किया गया है इतना ही नहीं मूल ग्रंथ की सम्पूर्ण छाया प्रामाणिक स्वरूप में रखने का पूर्ण प्रयत्न किया गया है। इस प्रकार करनेसे स्वाभाविक रूपसे ग्रंथ में संक्षेप हो गया है इसके साथ ही विषयोका निरूपण क्रमबद्ध हो गया है और पिष्टपेषण भी नहीं हुआ है। तत्त्वज्ञान जैसे गहन विषय को भी सर्व साधारण सरलतासे समझ सके इस लिये भाषा सरल रखी गई है। ऐसे भाववाही अनुवादो से ही आम जनतामें धार्मिक साहित्यका प्रचार हो सकता है।

यह ग्रन्थ मूल गुजराती पुस्तकका अनुवाद है। गुजराती भाषाके सम्पादक श्री गोपालदास जीवाभाई पटेल जैन तत्त्वज्ञान के अच्छे विद्वान है।

श्री पूजाभाई जैन ग्रन्थमाला की कार्यवाहक समितिने इस ग्रन्थ का अनुवाद करने की अनुमति दी, उसके लिये उनका आभार मानता हूँ।

बम्बई }
सेवक
चिमनलाल चकुभाई शाह
सहमंत्री
श्री. अ. भा. चै. स्था. जैन कॉन्फरन्स
ता. २५-६-१९३८

अनुक्रमणिका

आमुख

अध्ययन	प्रथम खण्ड	पृष्ठ
१	हिंसा का विवेक	१
२	लोकविजय ...	१०
३	सुख और दुःख ...	२०
४	सम्यक्त्व ...	२७
५	लोकसार ..	३१
६	कर्मनाश ...	४०
७	महापरिज्ञ	४७
८	विमोह ..	४८
९	भगवान महावीर का तप	५८

द्वितीय खण्ड.

१	भिक्षा ...	६७
२	शय्या ..	८४
३	विहार .	८४
४	भाषा .	१०१
५	वस्त्र ..	१०५
६	पात्र .	११०
७	अवग्रह ...	११३
८	खडा रहनेका स्थान .	११६
९	निशिथिका	११७
१०	मलमूत्र का स्थान .	११८
११	शब्द ..	१२०
१२	रूप	१२१
१३	पर क्रिया ..	१२२
१४	अन्योन्य क्रिया ..	१२३
१५	भावनापुं .	१२४
१६	विमुक्ति ...	१२५
१७	सुभाषित .	१२७

श्री हंसराज जिनागम विद्या-प्रचारक फंड समिति .: . ग्रथ चौथा




दानवीर श्रीमान् सेठ हंसराजभाई लक्ष्मीचन्द्र
अमरेली (माठियावाड)

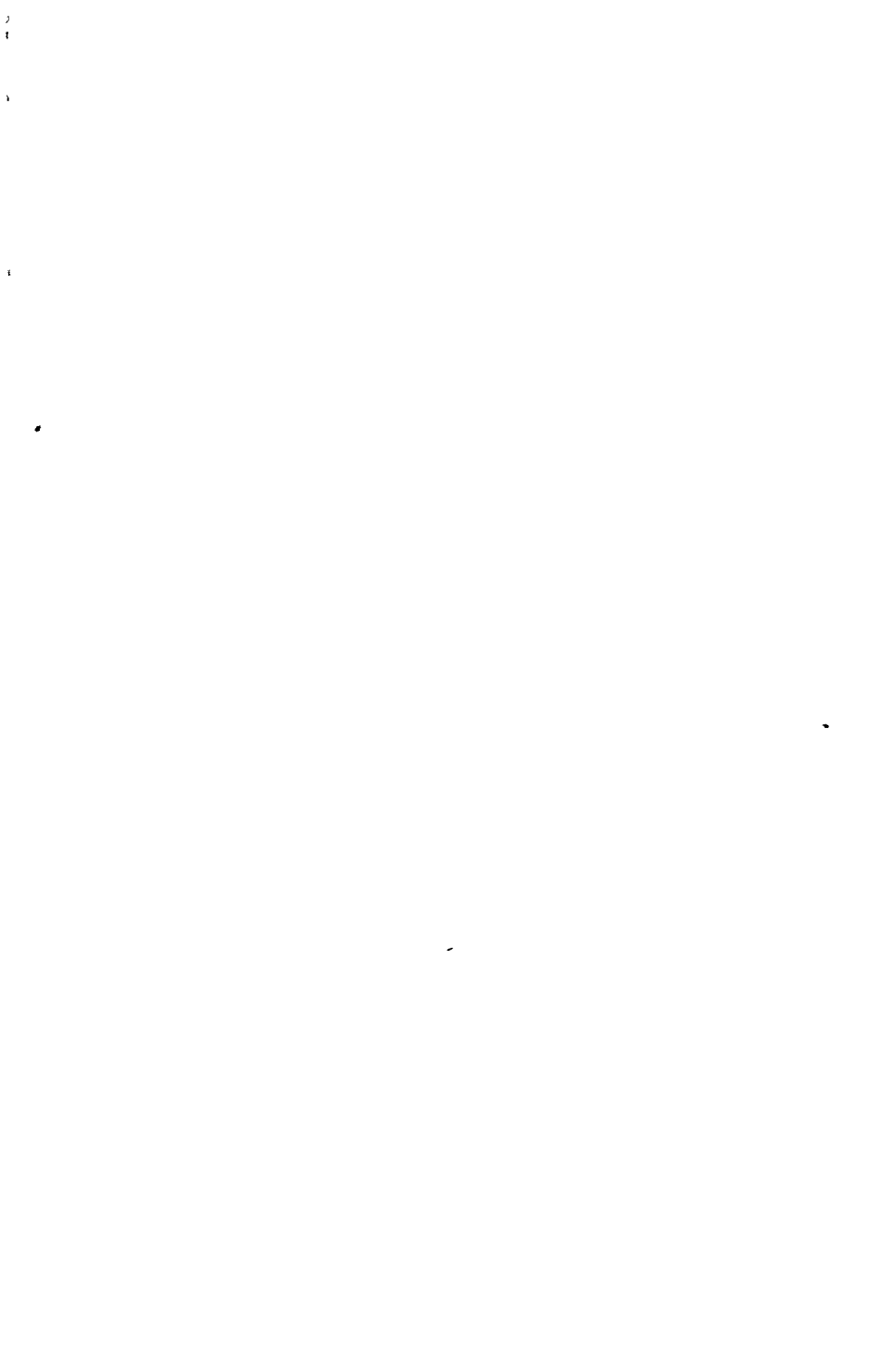




* आचारांग सूत्र *

प्रथम खण्ड





पहिला अध्ययन

—(०)—

हिंसा का विवेक

श्री सुधर्मास्वामी कहने लगे—

हे आयुष्मान् जंबु ! भगवान् महावीर ने कहा है कि संसार में अनेक मनुष्यों को यह ज्ञान नहीं है कि वे कहाँ से आये हैं और कहाँ जाने वाले हैं। अपनी आत्मा जन्म-जन्मान्तर को प्राप्त करती रहती है या नहीं, पहिले कौन थे और बाद में कौन होने वाले हैं, इसको वे नहीं जानते। [१-३]

परन्तु, अनेक मनुष्य जातिस्मरण ज्ञान से अथवा दूसरो के कहने से यह जानते हैं कि वे कहाँ से आये और कहाँ जाने वाले हैं। यह आत्मा जन्म-जन्मान्तर को प्राप्त करती है, अनेक लोक और योनियों में अपने कर्म के अनुसार भटकती रहती है और वे स्वयं आत्मा होने के कारण ऐसे ही है, इसको वे जाने हुए होते हैं। [४]

ऐसा जो जानता है, वह आत्मवादी कहा जाता है—कर्मवादी कहा जाता है—क्रियावादी कहा जाता है और लोकवादी कहा जाता है। [५]

टिप्पणी—कारण यह कि 'आत्मा है' ऐसा मानने पर वह 'क्रिया का कर्ता-क्रियावादी' होता है और क्रिया से कर्मबन्ध को प्राप्त होने पर कर्मवादी होने से लोकान्तर को—जन्म-जन्मान्तर को प्राप्त करता रहता है।

‘मैंने ऐसा किया’, ‘मैं ऐसा कराऊँगा,’ या ‘मैं ऐसा करने की अनुमति दूँगा’—इस प्रकार सारे संसार में विविध प्रवृत्तियाँ हो रही हैं। किन्तु ऐसी प्रवृत्तियों से कैसा कर्मबन्ध होता है, इसको थोड़े लोग ही जानते हैं ! इसी कारण वे अनेक लोक और योनियों में जन्म लेते रहते हैं, विविध वेदनाएँ सहन करते रहते हैं और इस प्रकार असह्य दुःखों को भोगते हुए संसार में भटकते रहते हैं। [६-६]

भगवान् महावीर ने इस सम्बन्ध में ऐसा समझाया है कि लोग शब्दादि विषयों और रागद्वेषादि कषायों से पीड़ित हैं, इस कारण उनको अपने हिताहित का भान नहीं रहता, उन्हें कुछ समझा सकना भी कठिन है। वे इसी जीवन में मान-सम्मान प्राप्त करने और जन्ममरण से छूटने के लिये या दुःखों को रोकने के लिये अनेक प्रवृत्तियाँ करते रहते हैं। अपनी प्रवृत्तियों से वे दूसरों की हिंसा करते रहते हैं—उन्हें परिताप देते रहते हैं। यही कारण है कि उन्हें सच्चा ज्ञान नहीं हो पाता।

भगवान् के इस उपदेश को बराबर समझने वाले और सत्य के लिये प्रयत्नशील मनुष्यों ने भगवान् के पास से अथवा उनके साधुओं के पास से ज्ञान लिया होता है कि अनेक जीवों की घात करना ही बन्धन है, मोह है मृत्यु है और नरक है। जो मुनि इसको जानता है, वही सच्चा कर्मज्ञ है क्योंकि जानने के योग्य यही वस्तु है। हे संयमोन्मुख पुरुषो ! तुम बारीकी से विचार कर देखो। [१०-१६]

मनुष्य दूसरे जीवों के प्रति असावधान न रहे। दूसरों के प्रति जो असावधान रहता है, वह अपनी आत्मा के प्रति असावधान रहता है

और जो आत्मा के प्रति असावधान रहता है, वह दूसरे जीवों के प्रति भी असावधान रहता है [२२]

सब जगह अनेक प्रकार के जीव हैं, उनको भगवान् की आज्ञा के अनुसार जानकर भय रहित करो। जो जीवों के स्वरूप को जानने में कुशल है, वे ही अहिंसा के स्वरूप को जानने में कुशल हैं, और जो अहिंसा का स्वरूप जानने में कुशल है, वे ही जीवों का स्वरूप जानने में कुशल हैं। वासना को जीतनेवाले, संयमी, सदा प्रयत्नशील और प्रमाद हीन वीर मनुष्यों ने इसको अच्छी तरह जान लिया है। [१५, २१, ३२-३३]

विषयभोग में आसक्त मनुष्य पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि वनस्पति और त्रस जीवों की हिंसा करते हैं, उन्हें इस हिंसा का भान तक नहीं होता। यह उनके लिये हितकारक तो है ही नहीं, बल्कि सच्चे ज्ञान की प्राप्ति के लिये भी बाधक है। इसलिये इस सम्बन्ध में भगवान् के उपदेश को ग्रहण करो।

जैसे कोई किसी अन्धे मनुष्य को छेदे-भेदे या मारे-पीटे तो वह उसे न देखते हुए भी दुःख का अनुभव करता है, वैसे ही पृथ्वी भी न देखते हुए भी अपने ऊपर होने वाले शस्त्र प्रहार के दुःख को अनुभव करती है, वे आसक्ति (स्वार्थ) के कारण उसकी हिंसा करते हैं, उनको अपनी आसक्ति के सामने हिंसा का भान नहीं रहता। परन्तु पृथ्वी की हिंसा न करने वाले संयमी मनुष्यों को इसका पूरा भान रहता है। बुद्धिमान् कभी पृथ्वी की हिंसा न करे, न करावे, न करते को अनुमति दे। जो मुनि अनेक प्रवृत्तियों से होने वाली पृथ्वी की हिंसा को अच्छी तरह जानता है वही सच्चा कर्ता है। [१६-१७]

इसी प्रकार जल में अनेक जीव हैं। जिनप्रवचन में साधुओं को कहा गया है कि जल जीव ही है, इस कारण उसका उपयोग करना हिंसा है। जल का उपयोग करते हुए दूसरे जीवों का भी नाश होता है। इसके सिवाय, दूसरों के शरीर का उनकी इच्छा विरुद्ध उपयोग करना चोरी भी तो है। अनेक मनुष्य ऐसा समझ कर कि जल हमारे पीने और स्नान करने के लिये है उसका उपयोग करते हैं और जल के जीवों की हिंसा करते हैं। यह उनको उचित नहीं है। जो मुनि जल के उपयोग से होने वाली हिंसा को बराबर जानता है, वही सच्चा कर्मज्ञ है। इसलिये बुद्धिमान् तीन प्रकार (करना, कराना और करते को अनुमति देना) से जल की हिंसा न करे। [२३-३०]

इसी प्रकार अग्नि का समझो। जो अग्निकाय के जीवों के स्वरूप को जानने में कुशल है, वे ही अहिंसा का स्वरूप जानने में कुशल हैं। मनुष्य विषय भोग की आसक्ति के कारण अग्नि तथा दूसरे जीवों की हिंसा करते रहते हैं क्योंकि आग जलाने में पृथ्वी काय के, घास-पान के, गोबर-कचरे में के तथा आस पास उड़ने वाले, फिरने वाले अनेक जीव जल मरते हैं दुःखी होकर नाश को प्राप्त होते हैं। [३६-३८]

इसी प्रकार अनेक मनुष्य आसक्ति के कारण वनस्पति की हिंसा करते हैं। मेरा कहना है कि अपने ही समान वनस्पति भी जन्मशील है, और सचित्त है। जैसे जब कोई हमको मारे-पीटे तो हम दुःखी हो जाते हैं, वैसे ही वनस्पति भी दुःखी होती है। जैसे हम आहार लेते हैं वैसे ही वह भी, हमारे समान वह भी अनित्य और अशाश्वत है, हम घटने-बढ़ने है। उसी प्रकार वह भी, और अपने में

जैसे विकार होते हैं, वैसे ही उसमें भी होते हैं। जो वनस्पति की हिंसा करते हैं, उनको हिंसा का भान नहीं होता। जो मुनि वनस्पति की हिंसा को जानता है, वही सच्चा कर्मज है। [४१-४७]

अंडज, पोतज, जरायुज, रमज, संस्वेदज, संमूर्द्धिम उदभिज और औपपातिक ये सब त्रस जीव हैं। अज्ञानी और मंद-मति लोगो का वारवार इन सब योनियों में जन्म लेना ही संसार है। जगत् में जहा देखो वही आतुर लोग इन जीवो को दुःख देते रहते हैं। ये जीव सब जगह त्रास पा रहे हैं। कितने ही उनके शरीर के लिये उनका जीव लेते हैं, तो कितने उनके घमड़े के लिये, मांस के लिये, लोही के लिये, हृदय के लिये, पीछी के लिये, बाल के लिये, सींग के लिये, दांत (हाथी के) के लिये, दाढ़ के लिये, नख के लिये, आंत के लिये, हड्डी के लिये, अस्थि मज्जा के लिये, आदि अनेक प्रयोजनो के लिये त्रस जीवो की हिंसा करते हैं, और कुछ लोग बिना प्रयोजन के त्रस जीवो की हिंसा करते हैं। परन्तु प्रत्येक जीव की शांति का विचार कर के, उसे बराबर समझ कर उनकी हिंसा न करे। मेरा कहना है कि सब जीवो को पीडा, भय और अशांति दुःखरूप है, इसलिये, बुद्धिमान् उनकी हिंसा न करे, न करावे। [४८-५४]

इसी प्रकार वायुकाय के जीवो को समझो। आसक्ति के कारण विविध प्रवृत्तियो द्वारा वायु की तथा उसके साथ ही अनेक जीवों की वे हिंसा करते हैं क्योंकि अनेक उड़ने वाले जीव भी भ्रष्ट में आ जाते हैं और इस प्रकार आघात, संकोच, परिताप और विनाश को प्राप्त होते हैं। [५८-६६]

जो मनुष्य जीवो की हिंसा में अपना अतिष्ठ समझता है, वही उसका त्याग कर सकता है। जो अपना दुख जानता है, वह अपने से बाहर के का दुख जानता है; और जो अपने से बाहर का दुख जानता है वही अपना दुख जानता है। यह दोनों समान हैं। शांति को प्राप्त हुए संयमी दूसरे जीवों की हिंसा करके जीने की इच्छा नहीं करते। [१५-४७]

प्रमाद और उसके कारण कामादि में आसक्ति ही हिंसा है। इस लिये बुद्धिमान् को, प्रमाद से भँने जो कुछ पहिले किया, आगे नहीं करूंगा ऐसा निश्चय करना चाहिये। [३४-३५]

हिंसा के मूल रूप होने के कारण कामादि ही संसार में भटकते हैं। संसार में भटकना ही कामादि का दूसरा नाम है। मनुष्य अनेक प्रकार के रूप देख कर और शब्द सुनकर रूपों और शब्दों में मूर्च्छित हो जाता है। इसी का नाम संसार है। ऐसा मनुष्य जिनो की आज्ञा के अनुसार चल नहीं सकता, किन्तु बाराबार कामादि को भोगता हुआ हिंसा आदि वक्र प्रवृत्तियों को करता हुआ प्रमाद के कारण घर में ही मूर्च्छित रहता है। [४०-४४]

‘विविध कर्मरूपी हिंसा की प्रवृत्ति मैं नहीं करूं’ इस भाव से उद्यत हुआ और इसी को माननेवाला तथा अभय अवस्था को जाननेवाला बुद्धिमान् ही इन प्रवृत्तियों को नहीं करता। जिन प्रवचन में ऐसे ही मनुष्य को ‘उपरत’ और ‘अनगार’ कहा है। संसार में होने वाली छ काय जीवो की हिंसा को वह बराबर जानता है, वही मुनि कर्मों को बराबर समझता है, ऐसा मैं कहता हूँ। बुद्धिमान् छ काय जीवो की हिंसा न करे, न करावे और करते हुए को अनु-

मति न दे। हिंसा से निवृत्त हुआ विवेकी वसुमान् (गुणसंपत्तिवान्) अरुणीय पापकर्मों के पीछे न दौड़े। पापकर्म मात्र में छ. में से किसी न किसी काय के जीवों की हिंसा या परिताप होता ही है। [३६, ६१]

इतने पर भी कितने ही अपने को 'अनगार' कहलाते हुए भी अनेक प्रवृत्तियों से जीवों की हिंसा किया करते हैं। वे अपनी मान-पूजा के लिये, जन्म-मरण से बचने के लिये, दुःखों को दूर करने के लिये या विषयासक्ति के कारण हिंसा करते हैं। ऐसे मनुष्य अपने लिये बन्धन ही बनाते हैं वे आचार में स्थिर नहीं होते और हिंसा करते रहने पर भी अपने को 'संयमी' कहलाते हैं किन्तु वे स्वच्छन्दी, पदार्थों में आसक्ति रखने वाले और प्रवृत्तियों में लवलीन लोगो का संग ही बढ़ाते रहते हैं। [६०]

जो सरल हो, मुमुक्षु हो और अदम्भी हो वही सच्चा अनगार है। जिस श्रद्धा से मनुष्य गृहत्याग करता है, उसी श्रद्धा को, शंका और आसक्ति का त्याग करके सदा स्थिर रखना चाहिये। वीर पुरुष इसी महामार्ग पर चलते आये हैं। [१८-२०]



दूसरा अध्ययन

—(०)—

लोकविजय

२२२६६६

(१)

जो कामभोग है वे ही संसार के मूलस्थान है और जो संसार के मूलस्थान है वे ही कामभोग हैं। कारण यह कि कामभोगों में आसक्त मनुष्य प्रमाद से माता-पिता, भाई-बहन, स्त्री-पुत्र, पुत्रवधु-पुत्री, मित्र परिचित और दूसरी भोग नामग्री तथा अन्नवस्त्र आदि की ममता से लीन रहता है। वह नव विषयों की प्राप्ति का इच्छुक और उसी में चित्त रखने वाला रात दिन परिताप उठाता हुआ, समय-कुसमय का विचार किये बिना कठिन परिश्रम उठाता हुआ बिना विचारे अनेक प्रकार के कुरम करता है, और अनेक जीवों का वध, छेद, भेद तथा चोरी, लूट, ब्रास आदि पाप कर्म करने के लिये तैयार होता है। इससे भी आगे वह किसीने न किया हुआ कर्म भी करने का विचार रखता है। [६२, ६६]

स्त्री और धन के कामी किन्तु दुःखों से डरने वाले वे मनुष्य अपने सुख के लिये शरीरबल, ज्ञातिबल, मित्रबल, प्रेत्यबल (दानव आदि का), देवबल, राजबल, चोरबल, अतिथिबल और श्रमणबल (इनसे प्राप्त मन्त्रतंत्र का अथवा सेवादि से संचित पुण्यका) को प्राप्त करने के लिये चाहे जो काम करते रहते हैं और ऐसा करते हुए जो हिंसा होनी है उसका जरा भी ध्यान नहीं रखते। [७५]

कामिनी और कांचन से मूढ़ उन मनुष्यों को अपने जीवन से अत्यन्त मोह होता है। मणि, कुंडल और हिरण्य (मोना)

आदि में प्रीति रखने वाले तथा स्त्रियों में अत्यन्त आसक्ति वाले उन लोगों को ऐसा ही दिखाई देता है कि यहां कोई तप नहीं है, दम नहीं है और कोई नियम नहीं है। जीवन और लोगो की कामना वाले वे मनुष्य चाहे जो बोलते हैं और इस प्रकार हिताहित से शून्य बन जाते हैं। [७६]

ऐसे मनुष्य स्त्रियों से हारे हुए होते हैं। वे तो ऐसा ही ही मानते हैं कि स्त्रियों ही सुख की खान है। वास्तव में तो वे दुःख, मोह, मृत्यु नरक और नीच गति (पशु) का कारण हैं। [८४]

काम भोगो के ही विचार में मन, वचन और काया से मग्न रहने वाले वे मनुष्य अपने पास जो कुछ धन होता है, उसमें अत्यन्त आसक्त रहते हैं और द्विपद (मनुष्य) चौपाये (पशु) या किसी भी जीव का वध या आघात करके भी उसको बढ़ाना चाहते हैं। [८०]

परन्तु मनुष्य का जीवन अत्यन्त अल्प है। जब आयुष्य मृत्यु से घिर जाता है, तो आंख, कान आदि इन्द्रियों का बल कम होने पर मनुष्य मूढ़ हो जाता है। उस समय अपने कुटुम्बी भी जिनके साथ वह बहुत समय से रहता है उसका तिरस्कार करते हैं। वृद्धावस्था में हंसी, खेल, रतिविलास और श्रृंगार अच्छा नहीं मालुम होता। जीवन और जवानी पानी की तरह बह जाते हैं। उस समय वे प्रियजन मनुष्य की मौत से रक्षा नहीं कर सकते। जिन माता पिता ने वचपन में उसका पालन-पोषण किया था और बड़ा होने पर वह उनकी रक्षा करता था। वे भी उसको नहीं बचा सकते। [६३-६५]

अथवा, असंयम के कारण अनेक बार उस को रोग होते हैं । या जिसके साथ वह बहुत समय से रहता आया हो वे अपने मनुष्य उमे पहिले ही छोड़ कर चले जाते हैं । इस प्रकार वे सुग्न के कारण नहीं बन सकते और न दुखों से ही बचा सकते हैं और न वह ही उनको दुखों से बचा सकता है । प्रत्येक को अपना सुख-दुःख खुद ही भोगना पडता है । [८०]

उसी प्रकार जो उपभोग सामग्री उमने अपने मनोगम्वन्धियों के साथ भोगने के लिये बडे प्रयत्न से अथवा चाहे जैसे कुकर्म करके इकट्ठी की हुई होती है, उसको भोगने का अवसर आने पर या तां वह रोगों से घिर जाता है या वे सगे-मम्वन्धी ही उसको छोड़कर चले जाते हैं या वह स्वयं ही उनको छोड़ कर चला जाता है । [६७]

अथवा, कभी उसको अपनी इकट्ठी की हुई संपत्ति की वाटना पडता है, चोर चुरा ले जाते हैं, राजा छीन लेता है, या वह खुद ही नष्ट हो जाती है, या आग में जल जाती है । यो सुख की आशा से इकट्ठी की हुई भोग सामग्री दुःख का ही कारण हो जाती है किन्तु मोह से मूढ़ हुए मनुष्य इसको-नहीं समझते [८३]

इस प्रकार कोई किसी की रक्षा नहीं कर सकता और न कोई किसी को बचा ही सकता है । प्रत्येक को अपने सुख-दुःख खुद ही भोगने पडते हैं । जब तक अपनी अवस्था मृत्युसे घिरी हुई नहीं है, कान आदि इन्द्रियों, स्मृति और बुद्धि आदि बराबर हैं तब तक अवसर जान कर बुद्धिमान् को अपना कल्याण साध लेना चाहिये । [६८-७१]

जरा विचार तो करो ! संसार में सब सुख ही चाहते हैं और सब के सब सुख के पीछे ही दौड़ते हैं । इतने पर भी जगत में सर्वत्र अंधा, बहरा, गूंगा, काना, तिरछा कूबड़ा, काला कोधी होने के दुःख देखे जाते हैं, वे सब दुःख विषयसुख में लगे रहने वाले मनुष्यों को अपनी आसक्तिरूप प्रमाद के कारण ही होते हैं । ऐसा सोचकर बुद्धिमान सावधान रहे । अज्ञानी मनुष्य ही विषयसुखों के पीछे पड़कर अनेक थोनियो में भटकते रहते हैं । [७७-७८]

‘मैंने ऐसा किया है और आगे ऐसा ऐसा करूंगा’ इस प्रकार से मन के घोड़े दौड़ाने वाला वह मायावी मनुष्य अपने कर्तव्यों में मूढ़ होकर बारबार लोभ बढ़ा कर खुद अपना ही शत्रु बन जाता है । उस सुखार्थी तथा चाहे जो बोलने वाले और दुःख से मूढ़ बने हुए मनुष्य की बुद्धि को सब कुछ उल्टा ही सूझता है । इस प्रकार वह अपने प्रमाद से अपना ही नाश करता है । [६४-६७]

काम (इच्छाएँ) पूर्ण होना असम्भव है और जीवन बढ़ाया नहीं जा सकता । काम भोगों का इच्छुक मनुष्य शोक करता रहता है और चिन्तित रहता है । मर्यादाओं का लोप करता हुआ वह अपनी कामासक्ति और मोह के कारण दुखी रहता है और परिताप को प्राप्त होता है । जिसके दुःख कभी नाश नहीं होते ऐसा वह मूढ़ मनुष्य दुःख के चक्कर में भटकता रहता है । [६२, ८]

भोग से तृष्णा का शमन कभी नहीं होता । वे तो महाभय रूप हैं और दुखों के कारण हैं । इसलिये उनकी इच्छा छोड़ दो और उनके लिये किसी को दुःख न दो । अपने को अमर के समान समझने वाला जो मनुष्य भोगों में अत्यन्त श्रद्धा रखता है, वह

दुखी होता है। इसलिये तृष्णा को त्याग दो। कामभोगों के स्वरूप और उनके विकट परिणाम को न समझने वाला कामी अन्त में रोता और पछताता है। [८४-८५, ९४, ९५]

विषय कषायादि में अति मूढ मनुष्य सच्ची शांति के मूलरूप धर्म को समझ ही नहीं सकता। इस लिये, वीर भगवान् ने कहा है कि महामोह में जरा भी प्रमाद न करो। हे धीर पुरुष! तू आशा और स्वच्छन्दता का त्याग कर। इन दोनों के कारण ही तू भटकता रहता है। सच्ची शांति के स्वरूप और मरण (मृत्यु) का विचार करके तथा शरीर को नाशवान् समझ कर कुशल पुरुष क्यों कर प्रमाद करेगा ? [८४]

जो मनुष्य ध्रुव वस्तु की इच्छा रखते हैं, वे क्षणिक और दुखरूप भोगजीवन की इच्छा नहीं करते। जन्म और मरण का विचार करके बुद्धिमान् मनुष्य दृढ (ध्रुव) संयममें ही स्थिर रहे और एक बार संयम के लिये उत्सुक हो जाने पर तो अक्सर जान कर एक मुहूर्त भी प्रमाद न करे क्योंकि मृत्यु तो आने ही वाली है। [८०, ९५]

ऐसा जो बारबार कहा गया है, वह संयम की वृद्धि के लिये ही है। [९४]

कुशल मनुष्य काम को निर्भूल करके, सब सांसारिक सम्बन्धों और प्रवृत्तियों से मुक्त होकर प्रव्रजित होते हैं। वे काम भोगों के स्वरूप को जानते हैं और देखते हैं। वे सब कुछ बराबर समझ कर किसी प्रकार की भी आकांक्षा नहीं रखते। [७५]

जो कामभोगो से ऊपर उठ जाते हैं वे वास्तव में मुक्त ही हैं । अकाम से काम को दूर करते हुए वे प्राप्त हुए कामभोगो में नहीं फंसते । [७४]

भगवान् के इस उपदेश को समझने वाला और सत्य के लिये उद्यत मनुष्य फिर इस तुच्छ भोगजीवन के लिये पापकर्म न करे और अनेक प्रवृत्तियों द्वारा किसी भी जीव की हिंसा न करे और न दूसरो से करावे । सब जीवो को आयुष्य और सुख प्रिय है तथा दुख और आघात अप्रिय है । सब ही जीव जीवन की इच्छा रखते हैं और इसी को प्रिय मानते हैं । प्रमाद के कारण अब तक जो कष्ट जीवो को दिया हो, उसे बराबर समझ कर, फिर वैसा न करना ही सच्चा विवेक है । और यही कर्म की उपशांति है । आर्य पुरुषो ने यही मार्ग बताया है । यह समझने पर मनुष्य फिर संसार से लिप्त नहीं होता । [६६, ८०, ६७, ७६]

(२)

जैसा भीतर है, वैसा बाहर है, और जैसा बाहर है वैसा भीतर है । पंडित मनुष्य शरीर के भीतर दुर्गन्ध से भरे हुए भागो को जानता है और शरीर के मल निकालने वाले बाहरी भागो के स्वरूप को बराबर समझता है । बुद्धिमान इसको बराबर समझ कर, बाहर निकाली हुई त्वार को चाटने वाले बालक की तरह त्यागे हुए भोगो में फिर नहीं पडता । [६३-६४]

विवेकी मनुष्य अरति के वश नहीं होता, उसी प्रकार वह रति के वश भी नहीं होता । वह अविमनस्क (स्थितप्रज्ञ) है । वह

कहीं राग नहीं रखता। प्रिय और अप्रिय शब्द और स्पर्शों सहन करने वाला वह विवेकी, जीवन की तृष्णा से निर्वेद पाता है और संयम का पालन करके कर्म शरीर को खखेर देता है। [६८-६९]

वीर पुरुष ऊंचा, नीचा और तिरछा सब और का सब कुछ समझ कर चञ्चल है। वह हिंसा आदि से लिप्त नहीं होता। जो अहिंसा में कुशल है और बंध से मुक्ति प्राप्त करने के प्रयत्न में रहता है, वही सच्चा बुद्धिमान है। वह कुशल पुरुष संयम का प्रारंभ करता है पर हिंसा आदि प्रवृत्तियों का नहीं। [१०२-१०३]

जो एक (काय) का आरम्भ (हिंसा) करता है, वह छ.काय के दूसरे का भी करता है। कर्म को बराबर समझ कर उसमें प्रवृत्ति न करे। [१७-१०१]

'यह मेरा है' ऐसे विचार को वह छोड़ देता है, वह ममत्व को छोड़ देता है। जिसको ममत्व नहीं है, वही मुनि सच्चा मार्गदर्ष्ट है। [६८]

संसारी जीव अनेक बार ऊंच गोत्रमें आता है, वैसे ही नीच गोत्रमें जाता है। ऐसा जान कर कौन अपने गोत्र का गौरव रखे, उसमें आसक्ति रखे या अच्छेद्वारे गोत्र के लिये हर्ष-शोक करे? [७७]

लोगों के सम्बन्ध को जो वीर पार कर जाता है, वह प्रशंसा का पात्र है। ऐसा मुनि ही 'ज्ञात' अर्थात् 'प्रसिद्ध' कहा जाता है। मेधावी पुरुष संसार का स्वरूप बराबर समझ कर और लोकसंज्ञा (लोक-प्रवृत्ति) का ध्याग करके पराक्रम करे, ऐसा मैं कहता हूँ। [१००, ६८]

पदार्थों को जो यथावस्थित रूप में (जैसा का तैसा) जानता है, वही यथार्थता में रहता है; और जो यथार्थता में रहता है, वही पदार्थों के यथावस्थित रूप का जानता है। ऐसे ही मनुष्य दूसरो को दुःखो का सच्चा जान करा सकते हैं। वे मनुष्य संसार ओघ के पार पहुंचे होते हैं और वे ही नीर्ण, मुक्त और विरक्त कहे जाते हैं, ऐसा मैं कहता हूँ। [१०१, ६६]

जो मनुष्य ज्ञानी है, उसके लिये कोई उपदेश नहीं है। ऐसा कुशल मनुष्य कुछ करे या न करे उससे वह न बद्ध है और न मुक्त है। तो भी लोक संज्ञा को सब प्रकार बराबर समझ कर और समय को जान कर वह कुशल मनुष्य उन कर्मों को नहीं करता जिनका आचरण पूर्व के महापुरुषोंने नहीं किया। [८१, १०३]

जो बंधे हुए (कर्मों से) को मुक्त करता है, वही वीर प्रशंसा का पात्र है। [१०२]

(३)

अपने को संसारियों के दुःखो का वैद्य बताने वाले, अपने को पंडित मानने वाले कितने ही तीर्थिक (मत प्रचारक) घातक, छेदक, भेदक, लोपक उपद्रवी और नाश करने वाले होते हैं। वे ऐसा मानते हैं कि किसीने नहीं किया, वह हम करेंगे। उनके अनुयायी भी उनके समान ही होते हैं। ऐसे मूढ़ मनुष्यों का संसर्ग न करो। जैसे दुर्वसु, असंयमी और जीवन चर्या में शिथिल मुनि सत्पुरुषो की आज्ञा के विग्राहक होते हैं। [६५-१००]

मोह से धिरे हुए और मंद कितने ही मनुष्य संयम को स्वीकार करके भी विषयों का सग्वन्ध होते ही फिर स्वछन्द हो

जाते हैं । 'अपरिग्रही रहेंगे' ऐसा मोचकर उद्यत होने पर भी वे कामभोगो के प्राप्त होते ही उनमें फंस जाते हैं और म्रच्छन्त रहकर शरदार मोह में फंयते हैं । वे न तो इय पार हैं और न उय पार । सच्चा साधु ऐसा नहीं होता । संयम में से अरति दूर करने वाले और संयम से न ऊवने वाले मेधावी वीर प्रगंसा के पात्र हैं । ऐसा मनुष्य शीघ्र ही मुक्त होता है । [७३, ६५, ७२, ८५]

उद्यमवंत, आर्य, आर्यप्रज्ञ और आर्यदर्शी ऐसा, संयमी मुनि समय के अनुसार प्रवृत्ति करता है । काल, बल, प्रमाण, क्षेत्र, अवसर, विनय, भाव और स्व-पर सिद्धान्तों को जानने वाला, परिग्रह से ममत्वहीन, यथासमय प्रवृत्ति करने वाला ऐसा वह नि संकल्प भिक्षु राग और द्वेष को त्याग कर संयमधर्ममें प्रवृत्ति करता है । अपनी जरूरत के अनुसार वस्त्र, पात्र, कंचल, रजोहरण, स्थान और आसन यह सब वह निर्दोष रीति से गृहस्थों के पास से मांग लेता है । गृहस्थ अपने लिये या अपने स्वजनो के लिये अनेक कर्म-समारम्भो के द्वारा भोजन, व्यालू, कलेवा या उत्सवादि के लिये आहार आदि खाद्य तैयार करते हैं या संग्रह कर रखते हैं । उनके पास से वह भिक्षु अपने योग्य आहार विधिपूर्वक मांग लेता है ।

वह भिक्षु महा आरम्भ से तैयार किया हुआ आहार नहीं लेता न दूसरो को दिलाता है या दूसरो को उसकी अनुमति देता है । सत्यदर्शी वीर गाढा-पतला और रूखा-सूखा भिक्षान्न ही लेते हैं । भिक्षा के सब प्रकार के दोष जान कर, उन दोषो से मुक्त होकर वह मुनि अपनी चर्या में विचरता है । वह न तो कुछ खरीदता है, न खरीदवाता है और न खरीदने की किसी को अनुमति देता है । कोई

मुझे नहीं देता, ऐसा कह कर वह क्रोध नहीं करता; थोड़ा देने वाले की निंदा नहीं करता, कोई देने का नकारा कहे तो वह लौट जाता है, देदे तो वापिस स्थान पर आ जाता है; आहार मिलने पर प्रसन्न नहीं होता, न मिले तो शोक नहीं करता; आहार मिलने पर उमको अपने परिमाण से लेता है, अधिक लेकर संग्रह नहीं करता, तथा अपने आप को सब प्रकार के परिग्रह से दूर रखता है। आर्य पुरुषो ने यही मार्ग बताया है, जिससे बुद्धिमान् लिस नहीं हो पाता ऐसा मैं कहता हूँ। [८५-९१]

वह संयमी मुनि जिस प्रकार धनवान को उपदेश देता है उसी प्रकार तुच्छ गरीब को भी; और जिस प्रकार गरीब को उपदेश देता है, उसी प्रकार धनवान को भी। धर्मोपदेश देते समय यदि कोई उसे अनादर से मारने को तैयार होता है तो उसमें भी वह अपना कल्याण समझता है। उसका श्रोता कौन है, और वह किस का अनुयायी है, ऐसा सोचने में वह अपना कल्याण नहीं समझता। [१०१-१०२]

बंध को प्राप्त हुआ को मुक्त करने वाला वह वीर प्रशंसा का पात्र है। [१०२]



तीसरा अध्ययन

—(०)—

सुख और दुःख

३३३६६६

संसार के लोगो की कामनाओ का पार नहीं है। वे चलनी में पानी भरने का प्रयत्न करते हैं। उन कामनाओं को पूरी करने में दूसरे प्राणियो का वध करना पड़े, उनको परिताप देना पड़े, उनको वश में करना पड़े या सारे के सारे समाज को वैसा करना पड़े तो भी वे आगे-पीछे नहीं देखते हैं। काममूढ़ और राग-द्वेष में फंसे हुए वे मन्द मनुष्य इस जीवन की मान-पूजा में आसक्त रहते हैं। और अनेक वासनाओ को इक्की करते हैं। इन वासनाओ के कारण वे वारवार गर्भ को प्राप्त होते हैं। विषयो में मूढ़ मनुष्य धर्म को न जान सकने के कारण जरा और मृत्यु के वश ही रहता है। [११२, १११, ११६, १०८]

इसी लिये वीर मनुष्य विषयसंग से प्राप्त होने वाले बंधन के स्वरूप को और उसके परिणाम में प्राप्त होने वाले जन्ममरण के शोक को जान कर संयमी बने तथा छोटे और बड़े सब प्रकार की अवस्था में वैराग्य धारण करे। हे ब्राह्मण ! जन्म, और मरण को समझ कर तू संयम के सिवाय दूसरी तरफ न जा, हिंसा न कर, न करा, तृष्णा से निर्वेद प्राप्त कर, स्त्रियो से विरक्त होकर उच्चदर्शी बन, और पापकर्मों से छूट। संसार की जाल को समझकर राग

और द्वेष से ग्रसष्ट रहने वाला छेड़न-भेड़न को प्राप्त नहीं होता, न वह जलता और न मारा ही जाता है । [११४, ११६]

माया आदि कपायो से और विषयासक्ति रूप प्रमाद से युक्त मनुष्य बारबार गर्भ को प्राप्त होता है । किन्तु शब्दरूपादि विषयो में तटस्थ रहनेवाला सरल और मृत्यु से डरने वाला जन्ममरण से मुक्त हो सकता है । ऐसा मनुष्य कामो में अप्रमत्त, पापकर्मों से उपरत, वीर, और आत्मा की सब प्रकार से (पापों से) रक्षा करने वाला, कुशल तथा संसार को भयस्वरूप समझने वाला और संयमी होता है । [१०६, १११]

लोगों में जो अज्ञान है, वह अहित का कारण है । दुःख मात्र आरंभ (सकाम प्रवृत्ति और उसके परिणाम में होने वाली हिंसा) से उत्पन्न होता है, ऐसा समझ कर, आरंभ ग्रहितकर हैं, यह मानो । कर्म से यह सब सुखदुःखरूपी उपाधि प्राप्त होती है । निष्कर्म मनुष्य को संसार नहीं बंधता । इस लिये कर्म का स्वरूप समझ कर और कर्ममूलक हिंसा को जान कर, सर्व प्रकार से संयम को स्वीकार करके; राग और द्वेष से दूर रहना चाहिये । बुद्धिमान लोक का स्वरूप समझ कर, कामिनी-कांचन के प्रति अपनी लालसा का त्याग कर के, दूसरा सब कुछ भी छोड़कर संयम धर्म में पराक्रम करे । [१०६, १०६, १००]

कितने ही लोग आगे-पीछे का ध्यान नहीं रखते, क्या हुआ और क्या होगा, इसका विचार नहीं करते । कितने ही ऐसा भी कहते हैं कि जो हुआ है, वही होगा । परंतु तथागत (सत्यदर्शी)

पुरुष कहते हैं कि कर्म की विचित्रता के कारण जैसा हुआ है, वैसा ही होगा, यह बात नहीं है और जैसा होता है, वैसा ही होना चाहिये, यह बात भी नहीं है। इस को अच्छी तरह समझ कर मनुष्य शुद्ध आचरण वाला बनकर कर्म का नाश करने में तत्पर बने। [११६]

हे धीर पुरुष ! तू संसारवृत्त के मूल और डालियों को तोड़ फेंक। इसका स्वरूप समझकर नैऋत्यदर्शी (आत्मदर्शी) बन। दुःख के स्वरूप को समझने वाला सम्यग्दर्शी मुनि परम मार्ग को जान लेने के बाद पाप नहीं करता। पदार्थों का स्वरूप समझ कर उपरत हुआ वह बुद्धिमान् सब पापकर्मों को त्याग देता है। [११७]

हे आर्थ पुरुष ! तू जन्म मरण का विचार करके और उसे समझ कर प्राणियों के सुख का ध्यान रख। तू पाप के मूल कारण रूप लोगो के सम्बन्ध की पाश (जाल) को तोड़ दे। इस पाश के कारण ही मनुष्य को हिंसा जीवी बनकर जन्ममरण देखना पड़ता है। [११८]

बुद्धिमान को सब पर समभाव रख कर तथा संसार के सम्बन्धों को बराबर जान कर सब प्राणियों को अपने समान ही समझना चाहिये। और हिंसा से विरत होकर किसी का हनन करना और करवाना नहीं चाहिये। मूर्ख मनुष्य ही जीवों की हिंसा करके प्रसन्न होता है। पर वह मूर्ख यह नहीं जानता कि वह खुद ही धैर बढ़ रहा है। अनेक बार कुगति प्राप्त होने के बाद बड़ी कठिनता से मनुष्यजन्म को प्राप्त करने पर किसी भी जीव के प्राणों

की हिंसा न करे, ऐसा मैं कहता हूँ । श्रद्धावान् और जिनाज्ञा को मानने वाला बुद्धिमान् लोक का स्वरूप बराबर समझ कर किसी भी तरह का भय न हो, इस प्रकार प्रवृत्ति करे । हिंसा से कमी करे पर अहिंसा में नहीं । [१०६, १११, ११४, १२४,]

जो मनुष्य शब्द आदि कामभोगों की हिंसा को जानने में कुशल है, वे ही अहिंसा को समझने में कुशल हैं । और जो अहिंसा को समझने में कुशल है, वे ही शब्द आदि कामभोगों की हिंसा को जानने में कुशल हैं । जिसने इन शब्द रूप, गन्ध, रस और स्पर्श का स्वरूप बराबर समझ लिया है, वही आत्मवान, ज्ञानवान, वेदवान धर्मवान और ब्रह्मवान है । वह इस लोक के स्वरूप को बराबर समझता है । वही सच्चा मुनि है । वह मनुष्य संसार के चक्र और उस के कारण रूप मायाके संग को बराबर जानता है । [१०६, १०६-७]

(२)

जगत् के किंकर्तव्यमूढ और दुःखसागर में डूबे हुए प्राणियों को देख कर अप्रमत्त मनुष्य सब कुछ त्याग कर संयम धर्म स्वीकार करे और उसके पालन में प्रयत्नशील बने । जिनको संसार के सब पदार्थ प्राप्त थे, उन्होंने भी उसका त्याग करके संयम धर्म स्वीकार किया है । इस लिये ज्ञानी मनुष्य इस सबको निःसार समझ कर संयम के सिवाय दूसरी किसी वस्तु का सेवन न करे । [१०६, ११४]

हे पुरुष ! तू ही तेरा मित्र है । बाहर मित्र को क्यों ढूँढता है ? तू अपनी आत्मा को निग्रह में रख । इस प्रकार तू दुःख से मुक्त हो जावेगा । [११७, ११८]

जो उत्तम है, वह दूर है; और जो दूर है वह उत्तम है। हे पुरुष ! तू सत्य को पहिचान ले। सत्य की साधना करने वाला, प्रयत्नशील, न्वहित में तत्पर, तथा धर्म को मानने वाला मेधावी पुरुष ही मृत्यु को पार कर जाता है और अपने श्रेय के दर्शन कर पाता है। कपायो का त्याग करने वाला वह अपने पूर्व कर्मों का नाश कर सकता है। [११८]

प्रमादी मनुष्य को ही सब प्रकार का भय होता है, अप्रमादी को किसी प्रकार का भय नहीं होता। लोक का दुःख जानकर और लोक के संयोग को त्याग कर वीर पुरुष महामार्ग पर बढ़ते हैं। उत्तरोत्तर ऊपर ही चढ़ने वाले वे, असंयमी जीवन की इच्छा नहीं करते। [१२३]

संसार में रति और अरति दोनों को ही मुमुक्षु त्याग दे। सब प्रकार की हंसी को छोड़कर मन, वचन और काया को संयम में स्थिर रखकर बुद्धिमान विचरे। [११७]

अपने श्रेय (कल्याण) को साधने में प्रयत्नशील रहने वाला संयमी दुःखों के फेर में आ जाने पर भी न घबराये। वह सोचे कि इस संसार में संयमी मनुष्य ही लोकालोक के प्रपंच से मुक्त हो सकता है। [१२०]

अमुनि (संसारी) ही सोते होते हैं, मुनि तो हमेशा जागते होते हैं। वे निर्धन्य शीत और ऊष्ण आदि द्वन्द्वों को त्याग देते हैं, रति और अरति को सहन करते हैं और कैसे ही कष्ट आ पड़ने पर शिथिल नहीं होते। वे हमेशा जागते हैं और वैर से विरत होते हैं।

हे वीर ! तू ऐसा बनेगा तो सब दुःखों से मुक्त हो सकेगा ।
[१०५, १०८]

संयम को उत्तम मानकर ज्ञानी कभी प्रमाद न करे । आत्मा की रक्षा करने वाला वीर पुरुष संयम के अनुकूल भिताहार के द्वारा शरीर को निभावे और लोक में सदा परदर्शी, एवान्तवासी, उपशांत समभावी, सहृदय और सावधान होकर काल की राह देखता हुआ विचरे । [११६ १११]

एक-दूसरे की शर्म रखकर या भय के कारण पापकर्म न करने वाला क्या मुनि है ? सच्चा मुनि तो समता को बराबर समझ कर अपनी आत्मा को निर्मल करने वाला होता है । [११५]

क्रोध मान, माया और लोभ को छोड़कर ही संयमी प्रवृत्ति करे । ऐसा हिंसा को त्याग कर संसार का अन्त कर चुकनेवाले दृष्टा कहते हैं । जो एक को जानता है, वही सबको जानता है, और जो सबको जानता है, वही एक को जानता है । जो एक को झुकाता है, वही सबको झुकाता है, और जो सबको झुकाता है, वही एक को झुकाता है । इसका मतलब यह है कि जो क्रोध आदि चार कपायों में से एक का नाश करता है, वही बाकी के तीनों का नाश करता है, और जो बाकी के तीनोंका नाश करता है, वही एक का नाश करता है । [१२१, १२४]

जो क्रोधदर्शी है, वही मानदर्शी है, जो मानदर्शी है वही मायादर्शी है, जो मायादर्शी है, वही लोभदर्शी है; जो लोभदर्शी है, वही रागदर्शी है; जो रागदर्शी है, वही द्वेषदर्शी है, जो द्वेषदर्शी है, वही मोहदर्शी है; जो मोहदर्शी है, वही गर्भदर्शी है, जो गर्भदर्शी है, वही जन्मदर्शी है,

जो जन्मदर्शी है, वही मृत्युदर्शी है, जो मृत्युदर्शी है, वही नरकदर्शी है; जो नरकदर्शी है, वही तिर्यचदर्शी है, जो तिर्यचदर्शी है, वही दुःखदर्शी है। इस लिये बुद्धिमान मनुष्य क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष और मोह को दूर करके गर्भ, जन्म, मृत्यु, नरक और निर्यचगति के दुःख दूर करे, ऐसा हिंसा को त्याग कर संगार का अन्त कर चुकने वाले दृष्टा कहते हैं।

संक्षेप में नये कर्मों को रोकने वाला ही पूर्व के कर्मों का नाश कर सकता है। दृष्टा (सत्य को जानने और मानने वाले) को कोई उपाधि नहीं होती। [१२५]



चौथा अध्यायन

—(०)—

सम्यक्त्व

२२२२२२

(१)

जो अरिहंत पहिले हो गये हैं, वर्तमान में हैं और भविष्य में होंगे, उन सबने ऐसा कहा है कि किसी भी जीव की हिंसा नहीं करना चाहिये, उस पर सख्ती नहीं करना चाहिये, उसे गुलाम या नौकर बनाकर उस पर बलात्कार नहीं करना चाहिये या उसे परिताप देना अथवा मारना नहीं चाहिये। यह धर्म शुद्ध है, नित्य है, शाश्वत है और लोक के स्वरूप को समझ कर ज्ञानी पुरुषोंने गृहस्थ और त्यागी सबके लिये कहा है। यही सत्य है, और जिन प्रवचन से इसी प्रकार कहा है। [१२६]

परन्तु विभिन्न वादों के प्रवर्तक कितने ही श्रमण-ब्राह्मण ऐसा कहते हैं कि, “ हमारे देखने, जानने सुनने और मानने के अनुसार और सब दिशाओं को खोजने के बाद हम कहते हैं कि सब जीवों की हिंसा करने और जबरदस्ती से उनसे काम लेने आदि में कोई दोष नहीं है। ” परन्तु आर्यपुरुष कहते हैं कि उनका ऐसा कहना अनार्थ वचन है जो ठीक नहीं है। ‘सब प्राणियों की हिंसा नहीं करना चाहिये, उनको परिताप नहीं देना चाहिये, नहीं मारना चाहिये, उनका गुलाम या नौकर बना कर उन पर बलात्कार नहीं करना चाहिये। ’ यही आर्यवचन है।

ऐसा कहने वाले प्रत्येक श्रमण-ब्राह्मण को बुनाकर पूछो कि, 'भाड़े, तुमको सुख दुःखरूप है या दुःख दुःखरूप?' याद वे मत्स्य बोलें तो यही कहेंगे कि, 'हमको सुख ही दुःखरूप है।' फिर उनसे कहना चाहिये कि, 'तुमको सुख जैसे दुःखरूप है वैसे ही सब जीवों को भी दुःख महा-भय का कारण और श्रंशान्ति कागक है।' संसार में बुद्धिमान मनुष्य इन श्रधर्मियों की उपेक्षा करते हैं। धर्मज्ञ और सरल मनुष्य शरीर की चिन्ता किये बिना, हिंसा का त्याग करके कर्मों का नाश करते हैं। दुःखमात्र आरम्भ—सकाम प्रवृत्ति और उससे होने वाली हिंसा—से होता है, ऐसा जान कर वे ऐसा करते हैं। दुःख के स्वरूप को समझने में कुशल वे मनुष्य कर्म का स्वरूप बराबर समझ कर लोगों को मच्छा ज्ञान दे सकते हैं [१३३-१३७]

संसार में अनेक लोगों को पापकर्म करने की आदत ही होनी है, इसके परिणाम में वे अनेक प्रकार के दुःख भोगते हैं। क्रूर कर्म करने वाले वे अनेक वेदना उठाते हैं। जो ऐसे कर्म नहीं करते वे ऐसी वेदना भी नहीं उठाते, ऐसा ज्ञानी कहते हैं। [१३२]

अज्ञानी और अन्याकार में भटकने वाले मनुष्य को जिन की आज्ञा का लाभ नहीं मिलता। जिस मनुष्य में पूर्व में भोगे हुए भोगों की कामना नष्ट हो गई है और जो (भविष्य के) परलोक के भोगों की कामना नहीं रखता, उसको वर्तमान भोगों की कामना क्यों होगी? ऐसे शमयुक्त आत्म-कल्याण में परायण, सदा प्रयत्नशील, शुभाशुभ के जानकार, पापकर्मों से निवृत्त, लोक (संसार) को बराबर समझ कर उसके प्रति तटस्थ रहने वाले और सब विषयों में सत्य पर दृढ़ रहने वाले वीरों को ही हम ज्ञान देंगे। ज्ञानी और बुद्ध

मनुष्य आरम्भ के त्यागी होते हैं, इस सचाई को ध्यान में रखो। जिसने वध, बंध, परित्याप और ब्राह्मण के (पाप) प्रवाहों को रोक दिया है और कर्म के परिणामों को समझ कर जो नैऋत्यदर्शी (आत्मदर्शी) हो गया है वह वेदवित् (वेद अर्थात् ज्ञान को जानने वाला) कर्मबन्धन के कारणों से पर (दूर) रहता है। [१३८-१३९]

(२)

अज्ञानियों को जो बन्ध के कारण हैं, वे ही ज्ञानियों को मुक्ति के कारण हैं, और जो ज्ञानियों को मुक्ति के कारण हैं, वे ही अज्ञानियों को बन्ध के कारण हैं। इसको समझने वाले संयमी को ज्ञानियों की आज्ञा के अनुसार लोक के स्वरूप को समझ कर, उनके बताए हुए मार्ग पर चलना चाहिये। संसार में पडकर धक्के खाने के बाद जागने और समझने पर मनुष्यों के लिये ज्ञानी पुरुष मार्ग बतलाते हैं। [१३०-१३१]

ज्ञानी पुरुषों से धर्म को समझ कर, स्वीकार करके पडा न रहने दे। परन्तु जो सुन्दर और मनोवाञ्छित भोग पदार्थ प्राप्त हुए हैं, उनसे वैराग्य धारण करके लोकरुप्रवाह का अनुसरण करना छोड़ दे। मैंने देखा है और सुना है कि संसार में आसक्त होकर विषयों में फँसने वाले मनुष्य बारबार जन्म को प्राप्त होते हैं। ऐसे प्रमादियों को देख कर, बुद्धिमानको सदा सावधान, अग्रमत्त और प्रयत्नशील रह कर पराक्रम करना चाहिये, ऐसा मैं कहता हूँ। [१२७-१२८]

जिन की आज्ञा मानने वाले निस्पृह बुद्धिमान मनुष्य को अपनी आत्मा का बराबर विचार करके उसको प्राप्त करने के लिये

शरीर की ममता छोड़ना चाहिये। जैसे अग्नि पुरानी लकड़ियों को एकदम जला डालती है, वैसे ही आत्मा में समाहित और स्थिरबुद्धि मनुष्य क्रोध आदि कपायो को जला दे। यह शरीर नाशवान् है, और भविष्य में अपने कर्मों के फलस्वरूप दुःख भोगना ही पड़ेगा। कर्मों के कारण तड़फते हुए अनेक मनुष्यों और उनके कष्ट अनुभवों की ओर देखो। अपने पूर्वसम्बन्धों का त्याग करके, विषयान्क्ति से उपशम प्राप्त करके शरीर को (संयम के लिये) बराबर तैयार करो। भविष्य में जन्म न प्राप्त करने वाले वीर पुरुषों का मार्ग कठिन है। अपने मांस और लोही को सुखा डालो। स्थिर मन वाले वीर संयम में रत, सावधान, अपने हित में तत्पर और हमेशा प्रयत्नशील होते हैं। ब्रह्मचर्य धारण करके कर्म का नाश करने वाले संयमी वीर मनुष्य को ही ज्ञानी पुरुषोंने माना है। [१३५-१३७]

नेत्र आदि इन्द्रियों को वश में करने के पश्चात् भी मंदमति मनुष्य विषयो के प्रवाह में बह जाते हैं। संयोग से मुक्त नहीं हुए इन मनुष्यों के बन्धन नहीं कटते। विषयभोग के कारण दुःखों से पीड़ित और अब भी उनमें ही प्रमत्त रहनेवाले हे मनुष्यो ! मैं तुम्हें गच्छी बात कहता हूँ कि मृत्यु अवश्य आवेगी ही। अपनी इच्छाओं के वशीभूत, असंयमी, काल से विरे हुए और परिग्रह में फँसे हुए लोग बारबार जन्म प्राप्त करते रहते हैं। [१३८, १३९]

जो मनुष्य पापकर्म से निवृत्त हैं, वे ही वस्तुतः वासना से रहित हैं। इसलिये बुद्धिमान तथा संयमी मनुष्य कपायो को त्याग दे। जिसको इस लोक में भोग की इच्छा नहीं है, वह अन्य निद्य प्रवृत्ति क्यों करेगा ? ऐसे वीर को कोई उपाधि क्यों होगी ? दृष्टा को उपाधि नहीं होती, ऐसा मैं कहता हूँ। [१३६, १३८, १४०]

पांचवां अध्ययन

—(०)—

लोकसार

६६६६६६

(१)

विषयी मनुष्य अपने भोगों के प्रयोजन से अथवा बिना किसी प्रयोजन से हिंसा आदि प्रवृत्ति करते रहते हैं। इस कारण वे अनेक योनियों में भटकते रहते हैं। उनकी कामनाएँ दबी-बड़ी होती हैं। इन कारण वे मृत्यु से घिरे रहते हैं। अपनी कामनाओं के कारण ही वे सच्चे सुख से दूर रहते हैं। ऐसे मनुष्य न तो विषयों को भोग ही सकते हैं और न उनको त्याग ही सकते हैं। [१४१]

रूप आदि में आसक्त और दुर्गति में भटकने वाले जीवों को देखो। वे बारबार अनेक दुःखों को भोगते रहते हैं। अपनी आसक्ति के वश में होकर वे अशरण को शरण मानकर पापकर्मों में ही लीन रहते हैं। अपने सुख के लिये चाहे जैसे कूर कर्म करने और उनके परिणामों से दुःखी वे सूढ और मन्द मनुष्य विपर्यास (सुख के बदले दुःख) को प्राप्त करते हैं और बारबार गर्भ, मृत्यु और मोह को ही प्राप्त होते हैं। ऐसे मनुष्यों की एक समान यही चर्या होती है, वे अति क्रोधी, अति मानी, अति मायावी, अति लोभी, अति आसक्त, विषयों के लिये नष्ट के समान आचरण करने वाले, अति शठ, अति संकल्पी, हिंसा आदि पापकर्मों में फसे हुए और अनेक कर्मों से घिरे हुए होते हैं। कितने ही त्यागी कहलाने वाले साधुओं की

भी यही दशा होती है। वे चाहते हैं कि उनकी इस प्रकार की चर्या को कोई न जान ले वे सब मूढ मनुष्य अज्ञान और प्रमाद के दोष से धर्म को जान नहीं सकते। [१४५-१४२]

हे भाई ! ये मनुष्य दुःखी हैं और पापकर्मों में कुशल हैं। अनेक प्रकार के परिग्रह वाले से मनुष्य उनके पास जो कम-अधिक, छोटा-बड़ा सचित्त या अचित्त है, उममें ममता रखते हैं। यही उनके लिये महा भय का कारण है। [१४५, १४६]

अज्ञानी, संद और मूढ मनुष्य के जीवन को, संयमी दृष्ट के अग्र भाग पर स्थित, हवा से हिलता हुआ और गिरने को तैयार पानी के वृन्द के समान समझते हैं [१४२]

जो मनुष्य विषयो के स्वरूप को बराबर समझता है, वह संसार के स्वरूप को बराबर समझता है, और जो विषयो के स्वरूप को नहीं जानता, वह संसार के स्वरूप को नहीं जानता। कामभोगो को सेवन करके उनको न समझने वाला मूढ मनुष्य दुःखी भूल करता है। अपने को प्राप्त विषयो का स्वरूप समझकर उनका सेवन न करे, ऐसा मैं कहता हूँ। कुशल पुत्र कामभोगो को सेवन नहीं करता। [१४३, १४४]

संयम को स्वीकार करके हिंसा आदि को त्यागने वाला जो मनुष्य यह समझता है कि इस शरीर से संयम की साधना करने का अवसर मिला है उसके लिये कहना चाहिये कि उसने अपना कर्तव्य पालन किया। बुद्धिमान ज्ञानियो से आर्थों का उपदेश दिया हुआ समता धर्म प्राप्त कर ऐसा समझता है कि मुझे यह अच्छा अवसर मिला। ऐसा अवसर फिर नहीं मिलता। इसलिये मैं कहता हूँ कि अपना वल संग्रह कर मत रजो। [१४६, १५१]

मैंने सुना है और अनुभव किया है कि बन्धन से छूटना प्रत्येक के अपने हाथ में है। इस लिये, ज्ञानियों के पाम से समझ कर, हे परमचञ्चुवाले पुरुष ! तू पराक्रम कर। यही ब्रह्मचर्य है ऐसा मैं कहता हूँ। [११०]

संयम के लिये उद्यत हुआ मनुष्य, ऐसा जानकर कि प्रत्येक को अपने कर्म का सुख-दुःख रूपी फल स्वयं ही भोगना पड़ता है, प्रमाद न करे। लोक-व्यवहार की उपेक्षा करके सब प्रकार के संगो से दूर रहने वाले मनुष्य को भय नहीं है। [१४६, १४६]

कितने ही मनुष्य ऐसे होते हैं जो पहिले सत्य के लिये उद्यत होते हैं और पीड़े उसी में स्थिर रहते हैं; कितने ही ऐसे होते हैं जो पहिले उद्यत होकर भी पीड़े पतित हो जाते हैं। ऐसे असंयमी दूसरो से ऐसा कहते हैं कि श्रविद्या से भी मोक्ष मिलता है। वे संसार के चक्र में फिरते रहते हैं। तीसरे प्रकार के ऐसे होते हैं जो पहिले उद्यत भी नहीं होते और पीड़े पतित भी नहीं होते। ऐसे असंयमी लोक के स्वरूप को जानते हुए भी संसार में ही डूबे रहते हैं। ऐसा जानकर मुनियोंने कहा है कि बुद्धिमान को ज्ञानी की आज्ञा को मानकर स्पृहा रहित, सदा प्रयत्नशील होकर तथा शील और संसार का स्वरूप सुनकर, सम्भ्रम कर काम रहित और द्वन्द्वहीन बनना चाहिये। [११२-१४२, ११३]

हे बन्धु ! अपने साथ ही युद्ध कर, बाहर युद्ध करने से क्या होगा ? खुद के सिवाय युद्ध के योग्य दूसरी वस्तु मिलना दुर्लभ है। जिन प्रवचन में कहा है कि जो रूप आदि में आसक्त रहते हैं, वे ही हिंसा में आसक्त रहते हैं। कर्मका स्वरूप सम्भ्रम कर किसी की

हिसा न करे और संयमी हो जाने पर स्वच्छन्दी न बने। साधुता का आकांक्षी, प्रत्येक जीव के सुख का विचार करके समस्त लोक में किसी को परिताप न दे किसी की हिंसा न करे। संयम की ओर ही लक्ष्य रखने वाला और असंयम के पार पहुँचा हुआ स्त्रियों में विरक्त हो कर निर्वेदपूर्वक रहे। वह गुणवान और ज्ञानी क्रिया प्रकार का पापकर्म न करे। [१२४]

जो सत्य है वही साधुता है; और जो साधुता है, वही सत्य है। जो शिथिल है, ढीले है, कामभोगों में लोलुप है, ब्रह्म आचार वाले हैं, प्रमत्त है और घर-धन्धे में ही लगे रहते हैं, उनको साधुता प्राप्त नहीं हो सकती। [१२५]

मुनि बनकर शरीर को बराबर वन में रखो। सम्यग्दर्शी वीर मनुष्य बचा-खुचा और रुखा-सूखा खाकर ही जीते हैं। पापकर्मों से उपरत ऐसे वीरों को कभी रोग भी हो जावे तो भी वे उनको सहन करते हैं। इसका कारण यह कि वे जानते हैं कि शरीर पहिले भी ऐसा ही था और फिर भी ऐसा ही है; शरीर सदा नाशवान, अध्रुव अनित्य, अशाश्वत, घटने-बढ़ने वाला और विकारी है। ऐसा सोचकर वह संयमी बहुत समय तक दुःखों को सहन करता रहता है। ऐसा मुनि इस संसार प्रवाह को पार कर सकता है। उसी को मुक्त और विरत कहा गया है, ऐसा मैं कहता हूँ। संयम में रत और विषयो से मुक्त और विरत रहने वाले मनुष्य को संसार में भटकना नहीं पड़ता। [१२६, १४७, १४८]

जिस प्रकार निर्मल पानी से भरा हुआ और अच्छे स्थान पर स्थित जलाशय अपने आश्रित जीवों की रक्षा का स्थान होता है, उसी

प्रकार इस संसार प्रवाह में जानी पुरुष हैं। वे सब गुणसंपत्तियों से परिपूर्ण होते हैं, समभावी होते हैं और पाप रूपी मल से निर्मल होते हैं। जगत के छोटे बड़े सब प्राणियों की रक्षा में लीन रहते हैं और उनकी सब इन्द्रियों विषयों से निवृत्त होनी हैं। ऐसे महर्षियों की इस संसार में कोई इच्छा नहीं होनी। वे काल की राह देखते हुए जगत में विचरते हैं। [१६०]

ऐसे कुशल मनुष्य की दृष्टि में, ऐसे कुशल मनुष्य के बताए हुए त्याग मार्ग में, ऐसे कुशल मनुष्य के आदर में, ऐसे कुशल मनुष्य के समीप संयमपूर्वक रहना चाहिये और ऐसे कुशल मनुष्य के मन के अनुसार चलना चाहिये। विनयवान शिष्य को इनकी सब तरह से सेवा करना चाहिये। ऐसा करने वाला संयमी इन्द्रियों को जीत कर सत्य वस्तु देख सकता है। [१५७, १६७]

जिसकी अवस्था और ज्ञान अभी योग्य नहीं हुए ऐसे अधूरे भिक्षु को ज्ञानी की अनुमति के बिना गांव-गांव अकेला नहीं फिरना चाहिये। ज्ञानी की आज्ञा के बिना बाहर का उसका सब पराक्रम व्यर्थ है। [१५६]

कितने ही मनुष्य शिक्षा देने पर नाराज होते हैं। ऐसे बमरङ्गी मनुष्य महा मोह से घिरे हुए हैं। ऐसे अज्ञानी और अंधे मनुष्यों को बारबार कठिन बाधाएँ होती रहनी हैं। हे भिक्षु! तुम्हें तो ऐसा न होना चाहिये, ऐसा कुशल मनुष्य कहते हैं। [१५७]

गुरु की आज्ञा के अनुसार अप्रमत्त होकर चलने वाले गुणवान संयमी से अनजान में जो कोई हिंसा आदि पाप हो जाता है तो उसका बन्ध इसी भव में नष्ट हो जाता है। परन्तु जो कर्म अनजान

में न हुआ हो, उमको जानने के बाद संयमी को उसका प्रायश्चित्त करना चाहिये। वेदवित् (ज्ञानवान) मनुष्य इस प्रकार अप्रमाद से किये प्रायश्चित्त की प्रशंसा करते हैं। [१५८]

स्वहित में तत्पर, बहुदर्शी, ज्ञानी, उपशांत सम्यक् प्रवृत्ति करने वाला और सदा प्रयत्नशील] ऐसा मुमुक्षु स्त्रियों को देख कर चलायमान न हो। वह अपनी आत्मा को समझावे कि लोक में जो स्त्रियां हैं, वे मेरा क्या भला करने वाली हैं? वे मत्र आराम के लिये हैं, पुरुषार्थ के लिये नहीं। [१५९]

मुनि ने कहा है कि कोई संयमी कामवासना से पीड़ित हो तो उसे रुखा-सूखा आहार करना और कम खाना चाहिये; सारे दिन ध्यान में खड़े रहना चाहिये; खूब पांत्र-पांत्र परिश्रमण करना चाहिये और अन्त में आहार का त्याग करना चाहिये पर स्त्रियों की तरफ मनोवृत्तिको नहीं जाने देना चाहिये। कारण यह कि भोग में पहिले दण्डित होना पड़ता है और पीछे दुःख भोगना पड़ता है या पहिले दुःख भोगना पड़ता है और पीछे दण्डित होना पड़ता है। इस प्रकार भोग मात्र क्लेश और मोह के कारण है। ऐसा समझ कर संयमी भोगों के प्रति न झुके, ऐसा मैं कहता हूँ। [१६०]

भोगों का त्यागी पुरुष काम कथा न करे, स्त्रियों की और न देखे, उनके साथ एकान्त में न रहे, उन पर ममत्व न रखे, उनको आकर्षित करने के लिये अपनी सज-धज न करे, वाणि को संयम में रखे, आत्मा को अंकुश में रखे और हमेशा पाप का त्याग करे। इस प्रकार की साधुता की उपासना करे, ऐसा मैं कहता हूँ। [१६१]

असंयम की खाई में आत्मा को कदापि न गिरने दे। संसार में जहाँ जहाँ विलास है, वहाँ से इन्द्रियों को हटा कर संयमी

मनुष्य जितेन्द्रि हो कर विचरे । जो अपने कार्य सफल करना चाहता है, उस वीर मनुष्य को ज्ञानी की आज्ञा के अनुसार पराक्रम करना चाहिये । [१६३, १६८]

गुरु परम्परा से ज्ञानी के उपदेश को जाने अथवा जाति स्मरण ज्ञान से या दूसरे के पास से सुनकर जाने । गुरुकी आज्ञाका कदापि उल्लंघन न करे और उसे बराबर समझ कर मृत्यु को ही पहिचाने । [१६७, १६८]

जिसको तू मारता है, वह तू ही है, जिसको तू वश में करना चाहता है, वह भी तू ही है; जिसको तू परिताप देना चाहता है, वह भी तू ही है; जिसको तू दवाना चाहता है, वह भी तू ही है; जिसको तू मार डालना चाहता है, वह भी तू ही है । ऐसा जान कर वह सरल और प्रतिबुद्ध मनुष्य किसी का हनन नहीं करता और न कगता ही है । वह मनुष्य ओजस्वी होता है, जिसकी कोई प्रतिष्ठा नहीं है ऐसे अप्रतिष्ठ आत्मा को वह जानता है । [१६४ १६५, १७०]

ऊपर, नीचे और चारों तरफ कर्म के प्रवाह बहते रहते हैं । इन प्रवाहों से आसक्ति पैदा होती है, वही संसार में भटकाने का कारण है । ऐसा समझ कर वेदवित् (ज्ञानवान्) इनसे मुक्त हो । इन प्रवाहों को त्याग कर और इनसे बहार निकल कर वह पुरुष अकर्मि हो जाता है । वह सब कुछ बराबर समझता और जानता है । जन्म और मृत्यु का स्वरूप समझ कर वह किसी प्रकार की इच्छा नहीं करता । वह जन्म और मृत्यु के मार्ग को पार कर चुका होता है । जिसका मन बहार कहीं भी नहीं भटकता, ऐसा वह समर्थ मनुष्य किसी से भी पराभव पाये बिना निरावलम्बन (भोगों के आलम्बन से रहितता-आत्मरति)में रह सकता है । [१६६, १६७]

वाणी से वह श्रुतीत है, तर्क वहां तक नहीं पहुँच पाता और बुद्धि भी प्रवेश नहीं कर सकती। जो आत्मा है, वही विज्ञाता है और जो विज्ञाता है, वही आत्मा है। इस कारण ही वह आत्मवादी कहा जाता है। समभाव उसका स्वभाव है। [१७०, १६५]

वह लम्बा नहीं है, छोटा नहीं है, गोल नहीं है, टेढ़ा नहीं है, चौकोना नहीं है और मंडलाकार भी नहीं है। वह काला नहीं है, हरा नहीं है, लाल नहीं है, पीला नहीं है और सफेद भी नहीं है। वह न तो सुगंधी है और न दुर्गंधी ही। वह तीखा नहीं है, कड़वा नहीं है, तुरा नहीं है खट्टा नहीं है और मीठा भी नहीं है। वह कठोर नहीं है, कोमल नहीं है, भारी नहीं है, हलका नहीं है, वह ठंडा नहीं है, गरम नहीं है, चिकना नहीं है और रुखा भी नहीं है। वह शरीररूप नहीं है। वह ऊगता नहीं है; वह संगी नहीं है; वह स्त्री नहीं है, पुरुष नहीं है और नपुंसक भी नहीं है। वह ज्ञाता है, विज्ञाता है। उसको कोई उपमा नहीं है। वह अरूपी सत्ता है, शब्दातीत होने के कारण उसके लिये कोई शब्द नहीं है। वह शब्द नहीं है, रूप नहीं है, गन्ध नहीं है, रस नहीं है, स्पर्श नहीं है—इनसे से कोई नहीं है, ऐसा मैं कहता हूँ। [१७१]

(३)

संशयात्मा मनुष्य समाधि को प्राप्त नहीं कर सकता। [१६१]

कितने ही मनुष्य संसार में रहकर जिन की आज्ञा के अनुसार चलते हैं, कितने ही त्यागी होकर जिन की आज्ञा के अनुसार चलते हैं परन्तु जिन की आज्ञा के अनुसार न चलने वाले लोगो के प्रति ऐसे दोनों प्रकार के मनुष्यो को ऐसा मान कर कि, “जिन भगवान्

ने ही सत्य और नि.शंक वस्तु (मिद्धान्त) बतलाई है, असहिष्णु नहीं होना चाहिये । कारण यह कि जिनप्रवचन को सत्य मानने वाले, श्रद्धावान् ममभे हुए और बराबर प्रव्रज्या को पालने वाले मुमुक्षुओं को कोड़े वार आत्मप्राप्ति हो जाती है, तो कोड़े वार जिन प्रवचन को सत्य मानने वाले को आत्मप्राप्ति नहीं होती । उसी प्रकार कितने ही ऐसे भी होते हैं जिनको जिन प्रवचन सत्य नहीं जान पडने पर भी आत्मप्राप्ति होनी है, तो कितने ही ऐसे भी होते हैं जिनको जिन प्रवचन सत्य नहीं जान पडता और आत्मप्राप्ति भी नहीं होती । [१६१, १६३]

इस प्रकार आत्मप्राप्ति होने की विचित्रता समझ वर समझदार मनुष्य अज्ञानी को कहे कि, “ भाई ! तू ही तेरी आत्मा के स्वरूप का विचार कर, ऐसा करने से सब सम्बन्धों का नाश हो जायेगा । खास बात तो यह है कि मनुष्य प्रयत्नशील है या नहीं ? ” कारण यह कि कितने ही जिनाज्ञा के विराधक होने पर भी प्रयत्नशील होते हैं और कितने ही जिनाज्ञा के आराधक होने पर भी प्रयत्नशील नहीं होते हैं । [१६३, १६६]



छठा अध्ययन

—(०)—

कर्मनाश

८८८८८८

(१)

जिस प्रकार पत्तो से ढके हुए तालाब में रहने वाला कछुआ गिर उठा कर देखने पर भी कुछ नहीं देख सकता और जिन प्रकार दुख उठाने पर भी वृद्ध अपना स्थान नहीं छोड़ सकते, उसी प्रकार रूप यात्रि में आगवत्त जीव अनेक कुत्तो से उत्पन्न होकर तृष्णा के कारण तड़फड़ते रहते हैं पर मोक्ष को प्राप्त नहीं कर सकते। उन्हें कंठमाल, कोढ़, क्षय, अपग्मार, नेत्र रोग, जटता, हंटापन मृंघ निजल ग्राना, उदररोग, मूत्र रोग, मूजन, भस्मक, कंप, पीठ सर्पिणी, हाथीपगा और मधुमेह इन सोलह में से कोई न कोई रोग होता ही है। दूसरे अनेक प्रकार के रोग और दुख भी वे भोगते हैं।

उन्हें जन्म-मरण तो अवश्य ही प्राप्त होता है। यदि वे देव भी हो तो भी उनको जन्म-मरण उपपात और च्यवन के रूप में होता ही है। प्रत्येक को अपने कर्मों के फल अवश्य ही भोगने पड़ते हैं। उन कर्मों के कारण उनको अन्धापन मिलता है या उन्हें अन्वकार में रहना पड़ता है। इस प्रकार उनको वारम्बार छोटे-बड़े दुख भोगने ही पड़ते हैं।

और, ये जीव एक दूसरे को भी तो सताते रहते हैं। इस लोक के इस महाभय को देखो। वे सब जीव अति दुखी होते हैं।

कामों में आसक्त ये जीव अपने क्षणभंगुर तथा बिना बल के शरीर द्वारा बारबार वध को प्राप्त होते हैं। इस प्रकार तड़फने पर भी ये जीव बारबार उन्हीं कर्मों को करते रहते हैं। विविध दुःखों और अनेक रोगों से पीड़ित ये मनुष्य अत्यन्त परिताप सहन करते हैं। इमलिये, हे मुनि, रोगों के कारण रूप विषयो की कामना को तू त्याग दे तू उनको महा भय रूप समझ और उनके कारण से अन्य जीवों की हिंसा मत कर। [१७२-१७८]

(२)

तेरी इच्छा सुनने की हो तो मैं तुझे कर्मनाश का मार्ग कह सुनाऊँ। संसार में विविध कुलों में जन्म लेकर और वहाँ सुख में पल कर जागृत हो जाने पर कितने ही मनुष्यों संसार का त्याग करके मुनि बने हैं। उस समय संयम के लिये पराक्रम करते हुए उन मुनियों को देख कर उनके स्वच्छन्दी और विषयासक्त सगे सम्बन्धियों ने दुःखी होकर रो रो कर उनसे उन्हें न छोड़ कर जाने की विनति की। परन्तु उन मुनियों को उनमें अपनी शरण नहीं जान पड़ती, फिर वे क्यों उनमें आसक्ति रखने लगे? जिसने अपने प्रेमी और सम्बन्धियों को छोड़ दिया है, वही असाधारण मुनि संसार-प्रवाह को पार कर सकता है। ऐसे ज्ञान की सदा उपासना करो, ऐसा मैं कहता हूँ। [१७९, १८७]

संसार को काम-भोग से पीड़ित जानकर और अपने पूर्व सम्बन्धों का त्याग करके उपशमयुक्त और ब्रह्मचर्य में स्थित त्यागी और गृहस्थ को ज्ञानी के पास से धर्म को यथार्थ जानकर उसी के अनुसार आचरण करना चाहिये। जीवों की सब योनियों को बराबर समझने वाले, उद्यमी, हिंसा के त्यागी और समाधियुक्त ऐसे ज्ञानी

अन्य मनुष्यों को मार्ग बतलाने हैं। और कितने ही वीर उदकी आज्ञा के अनुसार पराक्रम करते ही हैं तो कितने की आत्मा के जान को न जानने वाले संसार में भटकते रहते हैं। [१८१, १९०]

धर्म स्वीकार करके सावधान रहे और किमी में आगन्ति न रखे। महामुनि यह सोचकर कि यह सब मोक्षमय ही है, संयम में ही लीन रहे। सब प्रकार से अपने सगे-सम्बन्धियों को त्याग कर मेरा कांड नहीं है, मैं किसी का नहीं हूँ, ऐसा सोचकर विरत मुनि को संयम में ही यत्न करते हुए विचरना चाहिये। इस प्रकार का जिन की आज्ञा के अनुसार आचरण करना ही उत्कृष्टवाद कहलाता है। उत्तम धर्म के स्वरूप को समझ कर दृष्टिमान पुत्र्य परिनिर्वाण को प्राप्त करता है। जो फिर संसार में नहीं आते, वे ही मच्चे 'अचेलक' (नम्र) हैं। [१८२-१८४, १९५]

शुद्ध आचारवाला और शुद्ध धर्मवाला मुनि ही कर्मों का नाश कर सकता है। बराबर नमस्क कर संसार के प्रवाह से विरह चल कर संयम धर्म का आचरण करने वाला मुनि, नीण, मुक्त और विरत कहलाता है। इस प्रकार बहुत काल तक संयम में रहते हुए विचरने वाले भिक्षु को अरति क्या कर सकती है? [१८५-१८७]

ऐसे संयमी को अन्तकाल तक युद्ध में आगे रहने वाले वीर की उपमा दी जाती है। ऐसा ही मुनि पारगामी हो सकता है। किमी भी कष्ट से न डर कर और पूर्ण स्थिर और दृढ़ रहने वाला वह संयमी शरीर के अन्त समय तक काल की राह देखता रहे पर दुःखों से घबरा कर पीछे न हटे। बहुत समय तक संयम धर्म का पालन करते हुए विचरने वाले इन्द्रिय निग्रही पूर्वकाल के महापुरुषों ने जो सहन किया है, उस तरफ लक्ष्य रखो। [१९६, १८६]

ऐसे आ पडने वाले दुःख (परिपह) दो प्रकार के होते हैं— अनुकूल और प्रतिकूल । ऐसे समय पैदा होनेवाले मंशयो, को त्याग कर संयमी शान्तदृष्टि रहे । सुगन्ध हो या दुर्गन्ध हो अथवा भयंकर प्राणी कष्ट दे रहे हो, तो भी वीर को इन दुःखों को सहन करना चाहिये, ऐसा मैं कहता हूँ । मुनि को कोई गाली दे, मारे, उसके बाल खींचे या निंदा करे तो भी उसको ऐसे अनुकूल या प्रतिकूल प्रसंगों को समझ कर सहन करना चाहिये । [१८३-१८४]

वरो में, गांवों में, नगरों में, जनपदों में या इन सब के बीच में विचरते हुए, संयमी को हिंसक मनुष्यों की तरफ से अथवा अपने आप ही अनेक प्रकार के दुःख आ पडते हैं, उन्हें वीर को सम भाव से सहन करना चाहिये । [१६४]

जो भिक्षु वस्त्रहीन है, उसको 'मेरा वस्त्र पुराना हो गया है, मुझे दूसरा वस्त्र या सूडे-डोरा मांगना पडेगा, और उसको ठीक करना होगा' ऐसी कोई चिन्ता नहीं होती । संयम में पराक्रम करते हुए उस भिक्षु को वस्त्रहीन रहने के कारण घास चुभता है, ठंड लगती है, गरमी लगती है, डारस-मच्छर काटते हैं—इस प्रकार अनेक दुःख सहन करता हुआ और उपकरणों के भार से रहित वह अवस्त्र मुनि तप की वृद्धि करता है । भगवान् ने इसको जिस प्रकार बतलाया है, उसी प्रकार समझना चाहिये । [१८५]

अकेला फिरता हुआ वह मुनि छोटे कुलों में जाकर निर्दोष भिक्षा प्राप्त करता हुआ विचरे । वस्त्रहीन रहने वाला मुनि अधपेट भोजन करे । संयमी और ज्ञानी पुरुषों की भुजाएँ पतली होती हैं, उनके शरीर में मांस और लोही कम होते हैं । [१८३-१८४, १८६]

कर्मों के नाश का इच्छुक संयमी मुनि उनके स्वरूपको समझ कर संयम से क्रोध आदि कपायो का नाश करता है। जिन प्रवृत्तियों से हिंसक लोगो को जरा भी घृणा नहीं होती, उन प्रवृत्तियों के स्वरूप को वह जानता है। वही क्रोध, मान, माया और लोभ से मुक्त हो सकता है और ऐसे को ही क्रोध आदि को नष्ट करने वाला कहा गया है। [१८४, १८५]

प्रयत्नशील, स्थितात्मा, अरागी, अचल, एक स्थान पर नहीं रहने वाला और स्थिरचित्त वह मुनि शांति से विचारा करता है। भोगों की आकांक्षा नहीं रखने वाला और जीवों की हिंसा न करने वाला वह दयालु भिक्षु बुद्धिमान् कहा जाता है। संयम में उत्तरोत्तर वृद्धि करनेवाला वह प्रयत्नशील भिक्षु जीवों के लिये 'अमंदीन' (पानी से कभी न डूबने वाली) नौका के समान है। आर्य पुरुषों का उपदेश दिया हुआ धर्म भी ऐसा ही है। [१९५, १८७]

तेजस्वी, शान्तदृष्टि और वेदवित् (ज्ञानवान) संयमी संसार पर कृपा करके और उसका स्वरूप समझकर धर्म का कथन और विवेचन करे। सत्य के लिये प्रयत्नशील हो अथवा न हो पर जिनकी उसको सुनने की इच्छा हो ऐसे सब को संयमी धर्म का उपदेश दे। जीव मात्र के स्वरूप का विचार कर वह वैराग्य, उपशम, निर्वाण शौच, ऋजुता, निरभिमान, अपरिग्रह और अहिंसा रूपी धर्म का उपदेश दे। [१९४]

इस प्रकार धर्म का उपदेश देने वाला भिक्षु स्वयं कष्ट में नहीं गिरता और न दूसरो को गिराता है। वह किसी जीव को पीड़ा नहीं देता। ऐसा उपदेशक महामुनि दुःख में डूबे हुए सब जीवों को 'अमंदीन' नाव के समान शरणरूप होता है।

जैसे पत्नी अपने बच्चों को उछेरते हैं, वैसे ही वह भिन्न धर्म में न लगे हुए मनुष्यों को रात-दिन शास्त्र का उपदेश दे कर धीरे धीरे तैयार करता है, ऐसा मैं कहता हूँ। [१६५, १८७]

(३)

कितने ही निर्बल मन के मनुष्य धर्म को स्वीकार करके भी उसको पाल नहीं सकते। असह्य कष्टों को सहन न कर सकने के कारण वे साधुता की छोड़ कर कामो की तरफ ममता से फिर पीछे चले जाते हैं। संसार में फिर गिरने वाले उन मनुष्यों के भोग विघ्नों से परिपूर्ण होने के कारण अधूरे ही रहते हैं। वे तत्काल या कुछ समय के बाद ही मृत्यु को प्राप्त होते हैं और फिर बहुत काल तक संसार में भटकते रहते हैं। [१८२]

कितने ही कुशील मनुष्य ज्ञानियों के पाम से विद्या प्राप्त कर के उपशम को त्याग कर उद्धत हो जाते हैं। कितने ही मनुष्य ब्रह्मचर्य से रहते हुए भी भगवान की आज्ञा के अनुसार नहीं चलते। और कितने ही इस आशा से कि आनन्द से जीवन बीतेगा, ज्ञानियों के शिष्य बन जाते हैं, तो कितने ही संसार का त्याग करने के बाद ऊब जाने के कारण, कामो में आसक्ति रखते हैं। वे संयम का पालन करने के बदले गुरु का सामना करते हैं [१८८]

ऐसे मंद मनुष्य दूसरे शीलवान्, उपशांत और विवेकी भिन्नियों को, 'तुम शीलवान् नहीं हो,' ऐसा कहते हैं। यह मंद मनुष्यों की दूसरी मूर्खता है। [१८६]

कितने ही मनुष्य संयम से पतित होते हैं, पर वे दूसरों के सामने शुद्ध आचार की बातें बनाते हैं, और कितने ही आचार्य को

वन्दना-नमस्कार करते रहते भी ज्ञानभ्रष्ट और दर्शनभ्रष्ट होने के कारण जीवन को नष्ट कर डालते हैं। संयम स्वीकार कर लेने पर बाधाएँ आ जाने के कारण सुखार्थी हो कर असंयमी बन जाने वाले इन्द्रियो के दास कायर मनुष्य अपनी प्रतिज्ञाओं को तोड़ देते हैं। ऐसी प्रशंसा करना पाप है। ऐसे श्रमण विभ्रान्त हैं, विभ्रान्त हैं। [१६०-१६१, १६३]

उनका निष्कमण दुर्निष्कमण है। निद्रा के पात्र ऐसे मनुष्य बारंबार जन्म-मरण को प्राप्त होते रहते हैं। ये अपने को विद्वान् मानकर, 'मैं ही बड़ा हूँ।' ऐसी प्रशंसा करते रहने हैं। ये दूसरे तटस्थ संयमियों के सामने उद्धत होते हैं और उनको चाहे जो कहते रहते हैं। [१६६]

बालकों के समान मूर्ख ये अधर्मी मनुष्य हिंसार्थी होकर कहने लगते हैं कि, 'जीवो की हिंसा करो;' इस प्रकार ये भगवान के बताने हुए दुष्कर धर्म की उपेक्षा करते हैं। इन को ही आज्ञा के विराधक, काम भोगों से दूबे हुए और वितंडी कहा गया है। [१६२]

संयम के लिये प्रयत्नशील मनुष्यों के साथ रहते हुए भी ये अविनयी होते हैं। ये विरक्त और जितेन्द्रिय मनुष्यों के साथ रहते हुए भी अविरक्त और अदान्त होते हैं। [१६३]

ऐसी विचित्र स्थिति जान कर बुद्धिमान को पहिले ही धर्म को बराबर समझ लेना चाहिये और फिर अपने लक्ष्य में परायण बन कर शास्त्रानुसार पराक्रम करना चाहिये, ऐसा मैं कहता हूँ। [१६१, १६३]



सातवॉ अध्ययन

—(०)—

महापरिज्ञ

२३२६६६

[यह अध्ययन लुप्त है ऐसा प्राचीन प्रवाद है । इस अध्ययन के विषय के बारे में टीकाकार शीलाङ्कदेवने लिखा है कि 'संयम आदि गुणो से युक्त मुमुक्षु को कदाचित् मोह के कारण परिपह (संभट) और उपसर्ग (विघ्न) आ पड़े तो उसको अच्छी तरहसे सहन करना चाहिये ।' ऐसा सातवॉ अध्ययन का विषय है]



आठवाँ अध्ययन

—(०)—

विमोह

२२२६

(१)

आर्य पुरुषो द्वारा समभाव से उपदेश दिया हुआ धर्म सुनकर और समझ कर, बोध को प्राप्त होने पर अनेक बुद्धिमान योग्य अवस्था में ही संयम धर्म को स्वीकार करते हैं। किसी भी प्रकार की आकांक्षा से रहित वे संयमी किमी की हिसा नहीं करते, किसी प्रकार का परिग्रह नहीं रखते और न कोई पाप ही करते हैं। वे सच्चे अग्रंथ है। [२०७]

बुद्धिमान भिक्षु ज्ञानियो के पास से जीवो के जन्म और मरण का ज्ञान प्राप्त करके संयम में तत्पर बने। शरीर आहार से बढ़ता और दुखो से नष्ट हो जाता है। वृद्धावस्था में शक्तियां कमजोर हो जाने पर कितने ही मनुष्य संयम धर्म का पालन करने में असमर्थ हो जाते हैं। इस लिये, बुद्धिमान भिक्षु समय रहते ही जाग्रत हो कर, दुख पड़ने पर भी प्रयत्नशील और आकांक्षाहीन बन कर संयमोन्मुख बने और दया धर्मका पालन करे। जो भिक्षु कर्मों का नाश करने वाले शस्त्ररूप संयम को बराबर समझता है और पालता है, वही कालज्ञ, बलज्ञ, मात्रज्ञ, क्षणज्ञ, विनयज्ञ और समयज्ञ है। [२०८-२०९]

कितने ही लोगो को आचार का कुछ ज्ञान नहीं होता। हिंसा से निवृत्त न होने वाले उनको जीवो को हनने-हनाने से अथवा

चोरी आदि करने, कराने में कुछ बुरा नहीं जान पड़ता । कुछ कहते हैं, 'लोक है' कुछ कहते, 'लोक नहीं है' । कोई लोक को ध्रुव कहते हैं, कोई अध्रुव कहते हैं । कोई उसको सादि (आदि वाला) कहते हैं तो कोई उसको अनादि कहते हैं । कोई उसको अन्तवाला कहते हैं तो कोई उसको अनन्त कहने हैं । इसी प्रकार वे सुकृत-दुकृत, पुण्य पाप, साधु-असाधु सिद्धि-असिद्धि और नरक-अनरक के विषयों में अपनी अपनी मान्यता के अनुसार वाद-विवाद करने हैं । उनसे इनता ही कहना चाहिये कि तुम्हारा कहना अहेतुक है । आशुपत्न, सर्वदर्शी और सर्वज्ञ भगवान ने जिस प्रकार धर्म का उपदेश दिया है, उस प्रकार उनका (वादियों का) धर्म अथार्थ नहीं है । [१६६]

अथवा, ऐसे विवाद के प्रसंगों में मौन ही धारण करे, ऐसा मैं कहता हूँ । 'प्रत्येक धर्म में पाप को (त्याग करने को) स्वीकार किया है । इस पाप से निवृत्त होकर मैं विचरता हूँ यही मेरी विशेषता है, " ऐसा समझ कर विवाद न करे । [२००]

और, यह भी भली भाँति जान ले कि खान-पान, वस्त्र, पात्र, कंचल या रजोहरण मिले या न मिले तो भी मार्ग छोड़ कर कुमार्ग पर चलने वाले विधर्मी लोग कुछ दे, (कुछ लेने के लिये) निमन्त्रण दे या सेवा करे तो उसे स्वीकार न करे । [१६८]

मतिमान जिन (मूल में 'भाहण' शब्द है, जिसका अर्थ सच्चा ब्राह्मण या मा+हण अर्थात् अहिंसा का उपदेश देने वाले जिन होता है ।) के बताए हुए धर्म को समझ कर, फिर भले ही गाँव में रहे या अरण्य में रहे, अथवा गाँव में न रहे या अरण्य में न रहे, परन्तु महापुरुषों के बताए हुए अहिंसा, सत्य और अपारि-ग्रह, इन तीनो व्रतों के स्वरूप को बग़ैर समझ कर अर्थ पुरुष

प्रयत्नशील बने। ऊंची नीची और तिगड़ी सग दिशाओ में प्रवृत्ति मात्र से प्रत्येक जीव को होने वाले दुख को जान कर बुद्धिमान सकाम प्रवृत्तियां न करे न करावे और न करते हुए को अनुमति दे। जो ऐसी प्रवृत्तियां करते हैं, उनसे संयमी दूर रहे। विविध प्रवृत्तियों के स्वरूप को रामक वर संयमी किसी भी प्रकार का आरम्भ न करे। जो पाप कर्म से निवृत्त हैं, वही सच्चा वासना रहित हैं। [२००-१]

(२)

संयमी भिक्षु अपनी भिक्षा के सम्बन्ध के आचार का बराबर पालन करे, ऐसा बुद्ध पुरुषो ने कहा है। [२०४]

साधारण नियम यह है कि (गृहस्थ) स्वधर्मी या परधर्मी साधुको खान-पान, सेवा-मुखवास, वस्त्र-पात्र, कवल-रजोहरण न दे, इनके लिये उनको निमन्त्रण न दे, और इन वस्तुओ से आदरपूर्वक उनकी सेवा भी न करे [१६७]

इसी प्रकार सद्धर्मी साधु असद्धर्मी साधु को खान-पान, वस्त्र आदि न दे या इन वस्तुओ के लिये उनको निमन्त्रण देकर उनकी सेवा भी न करे हों, सद्धर्मी साधुकी सेवा करे। [२०५-६]

स्मशान में, उजाड़ घर में, गिरिगुहा में वृक्ष नीचे, कुंभार के घर या अन्य स्थान पर साधन करते, रहते, बैठते, विश्रांति लेते और विचरते हुए भिक्षु को कोई गृहस्थ आकर खान-पान वस्त्र आदि के लिये निमन्त्रण दे, और इन वस्तुओ को हिंसा करके, खरीद लाकर, छीन कर, दूसरे की उडा लाकर या अपने घर से लाकर देना चाहे या मकान बनवा देकर वहा खा-पी कर रहने के लिये कहे तो भिक्षु कहे कि, हे आयुष्यमान् ! तेरी बात मुझे स्वीकार नहीं है क्योंकि मैं ने इन प्रवृत्तियों को त्याग दिया है। [२०२]

स्नान आदि में रहने वाले भिन्न को जिमाने के लिये या रहने के लिये गृहस्थ हिंसा आदि करके मकान बनवा दे या खान-पान तैयार करे और इसका पता भिन्न को अपनी सहजबुद्धि से लगा जाय, किसी के कहने से या दूसरे से सुनने से मालुम पड जाये तो वह नुरन्त ही उस गृहस्थ को उसी प्रकार मना कर दे [२०३]

भिन्न से पूछ कर या उमसे बिना पूछे उसके लिये गृहस्थने बडा खर्च किया हो और बाद में भिन्न उन वस्तुओ को लेने से इनकार करे और इससे गृहस्थ उसको मारे या सन्ताप दे तो भी वह वीर भिन्न उन दुखो को सहन ही करे अथवा वह गृहस्थ बुद्धिमान हो तो उसको तर्क से अपना आचार समझा दे । यदि ऐसा न हो सके तो मौन ही रहे । [२०४]

भिन्न या भिन्नुणी आहार-पानी खाते पीते समय उसके स्वाद के लिये उसको मुंह में इधर-उधर न फेरे । ऐसा करने वाला भिन्न उपाधि से मुक्त हो जाता है और उमका तप बढ़ता है । भगवान द्वारा बताया हुए इस मार्ग को समझकर उम पर समभाव से रहे । [२००]

ठंड से धूजते हुए भिन्न को गृहस्थ आकर पूछे कि, तुमको कामवामना तो नहीं मताती ? तो वह कहे कि मुझे कामवामना तो नहीं सताती, पर यह ठंड सहन न होने के कारण मैं धूजता हूँ । परन्तु आग जला कर तापने का या दूसरों के कहने से ऐसा करने का हमारा आचार नहीं है । भिन्न को ऐसा कहते सुन कर कोई नीमरा आदमी खुद ताप लगाकर उसे तपावे तो भी भिन्न उस ताप को न ले । [२१०]

कोड़े भिजु एक पात्र और तीन वस्त्रधारी हो या एक पात्र और दो वस्त्रधारी हो या एक पात्र और एक वस्त्रधारी हो तो उसे यह न चाहिये कि वह एक वस्त्र और मांगे। हेमन्तश्रुतु के व्रीतने पर ग्रीष्म के प्रारम्भ में अपने जीर्ण वस्त्रों को त्याग कर ऊपर का और एक नीचे का वस्त्र रखे या एक ही वस्त्र रखे या वस्त्र ही न रखे, भिजु को जैसे वस्त्र लेने योग्य हो, वैसे ही पहने, वह उनको न धोये और न धोये हुए या रंगे हुए वस्त्र ही पहने। गाव वहार जाते समय कोड़े उसे लूटने की इच्छा करे तो वह अपने वस्त्रों को छिपावे नहीं और न ऐसे वस्त्र ही वह पहने। [२११-२१२]

ऐसा करने वाला भिजु उपाधि से मुक्त हो जाता है और उसका तप बढ़ता है। यह वस्त्र धारी का आचार है। भगवान् द्वाग वताणु हुए इस मार्ग को बराबर समझ कर वह समभाव से रहे। [२१३-२१४]

जो भिजु बिना वस्त्र के रहता हो, उसको ऐसा जान पड़े कि मैं तृण-स्पर्श, ठंड, गरमी, डाल-मच्छर के उपद्रव तथा ठूमेरे संकटों को सहन कर सकता हूँ, परन्तु अपनी लज्जा ढाके बिना नहीं रह सकता तो वह एक कटिवन्ध स्वीकार कर ले। बिना वस्त्र के ठंड गरमी आदि अनेक दुःख सहने वाला वह भिजु उपाधि से मुक्त हो जाता है और उसका तप बढ़ता है। [२२३-२२४]

यदि भिजु कामवासना के बशीभूत हो जाय और उसको वह सहन न कर सकता हो तो वह वसुमान और समभदार भिजु स्वयं अकार्य से प्रवृत्ति न करके आत्मघात कर ले। ऐसे संयोगो में उसके लिये ऐसा करना ही श्रेय है, यही मरण का योग्य अवसर है, यही उसके संसार को नष्ट करने वाली वस्तु है, यही उसके लिये धर्माचार

है, और हितकर, सुखकर, योग्य और सदा के लिये निश्चयस्वरूप है । [२१५]

यदि भिक्षु को ऐसा जान पड़े कि मैं अकेला हूँ, मेरा कोई नहीं है और न मैं किसी का हूँ तो वह अपनी आत्मा को अकेला ही समझे । ऐसा समझने वाला भिक्षु उपाधि से मुक्त हो जाता है और उसका तप बढ़ता है । भगवान् द्वारा बताया हुआ इस मार्ग को बराबर समझ कर वह समभाव से रहे । [२१६]

यदि किसी भिक्षु को ऐसा जान पड़े कि मैं रोग से पीड़ित हूँ, अशक्त हूँ और भिक्षा के लिये एक घर से दूसरे घर नहीं जा सकता, उसकी ऐसी स्थिति समझ कर कोई दूसरा उसको आहार पानी लाकर दे तो उसको तुरन्त ही विचार कर कहना चाहिये कि, 'हे आयुष्मान् तुम्हारा लाया हुआ यह आहार-पानी मुझे स्वीकार करने योग्य नहीं है ।' [२१६]

किसी भिक्षु का ऐसा नियम हो कि, बीमार होने पर मैं दूसरे को अपनी सेवा करने के लिये नहीं कहूँ पर ऐसी स्थिति में यदि समान धर्मी जो अपने आप ही मेरी सेवा करना चाहें तो स्वीकार कर लूँ, और इसी प्रकार मैं अच्छा हो जाऊँ तब कोई समान धर्मी बीमार हो जाये तो उसके न कहने पर मैं उसकी सेवा करूँ तो वह भिक्षु अपने नियम को बराबर समझ कर उस पर दृढ़ रहे । [२१७]

इसी प्रकार किसी भिक्षु का ऐसा नियम हो कि मैं दूसरे की सेवा करूँगा, पर अपनी सेवा दूसरे से नहीं कराऊँगा, अथवा मैं दूसरे की सेवा नहीं करूँगा पर दूसरे मेरी सेवा करेंगे तो इनकार

नहीं करूंगा, या मैं दूसरों की सेवा नहीं करूंगा और न उनमें अपनी ही कगड़ेंगा,—तो वह अपने नियम को बराबर समझ कर उस पर दृढ़ रहे । [२१७]

इस प्रकार की अपनी प्रतिज्ञाओं पर दृढ़ रहना शक्य न हो तब प्रतिज्ञा भंग करने के बदले आहार त्याग कर मरण स्वीकार करने पर प्रतिज्ञा न छूटे । ज्ञान, त्यागी तथा मन और इन्द्रियों को वश में रखने वाले भिक्षु के लिये ऐसे योगों में यही श्रेय है, यही उसके लिये मरण का योग्य अवसर है । (आदि सूत्र २१५ के अनुसार) [२१७]

बुद्धिमान भिक्षु जिन प्रकार जीने की इच्छा न करे, उन्ही प्रकार मरने की इच्छा भी न करे । मोज के इच्छुक को तटस्थता पूर्वक अपनी प्रतिज्ञारूप समाधि की रक्षा करना चाहिये; और आन्तर तथा बाह्य पदार्थों की समता त्याग कर आत्मा को (प्रतिज्ञा भंग से) भ्रष्ट न होने देने की इच्छा करना चाहिये । अपनी प्रतिज्ञा रूप समाधि की रक्षा के लिये जो उपाय ध्यान में आवे, उन्ही का तुरन्त प्रयोग करे । अन्त में अशक्य हो जाय तो वह गांव में अथवा जंगल में जीव-जन्तु से रहित स्थान देखकर वहा घाम का विछौना बनावे । फिर आहार का त्याग करके उस विछौने पर वह भिक्षु अपने शरीर को रख दे और मनुष्य आदि उनको जो संकट हैं उनको सहन करे पर मर्यादा का उल्लंघन न करे । [४-घ]

नोट—यहाँ १ से २५ तक आठवे उद्देशक की संख्या है ।

इसमें सूत्र संख्या नहीं है ।

ऊपर नीचे चलने वाले और वहां फिरने वाले जीव-जन्तु उस भिक्षु के मांस-लोही को खावें तो वह उनको मारे नहीं और उनको

उड़ाने तक नहीं । वे सब देह को ही पीड़ा देते हैं, ऐसा समझ कर मुनि एक स्थान से दूसरे स्थान पर न जावे, परन्तु क्रोध, हिंसा आदि से दुःख पाने वाला वह भिक्षु सब कुछ सहन करे । अनेक प्रकार के बन्धनों से दूर रहने वाला वह भिक्षु इस प्रकार समाधि से आयुष्य को पूर्ण करे । संयमी और ज्ञानी मनुष्यों के लिये यही श्रेय है । [१० ११]

• ४ :

यदि भिक्षु को ऐसा जान पड़े कि, मैं अब समय-पालन के लिये इस शरीर को धारण करने में अशक्त हूँ, तब वह क्रमशः अपना आहार कम करता रहे, कपायो से निवृत्त हो और समाधि युक्त होकर पटिये के समान स्थिर रहे; फिर यदि एकदम अशक्त हो जाय तो गांव या नगर में जा कर घास माग लावे । उसको लेकर एकान्त में जहाँ जीव-जन्तु, पानी, गीली मिट्टी काँड, जाले न हो ऐसे स्थान को बराबर देख-भाल कर वहाँ घास बिछावे । उस पर बैठ कर 'इत्वरित मरण' स्वीकार करे । फिर, अनाहार से रहते हुए जो दुःख आँवे, उनको सहन करे पर दूसरों के पास से किसी प्रकार का उपचार न करावे । ऐसा करने पर यदि इन्द्रियोँ अफ़ड जाँवे तो उनको हिलावे-डुलावे । ऐसा करते हुए भी वह अगर्ह, अचल और समाहित कहलाता है । मन स्वस्थ रहे और शरीर को कुछ अवलम्बन मिले तो उसके लिये वह चक्रमण करे या शरीर को संकोचे या फैलावे, पर हो सके तो जड़ की तरह स्थिर रहे । थका हुआ भिक्षु इधर-उधर करवट बदले या अपने अंगों को सिकोड़ ले । बैठते २ थकने पर अन्त में सो भी जाय । [२२१-२२२, १२-१६]

इस प्रकार के अद्वितीय मरण को स्वीकार करके अपनी इन्द्रियों को वश में रखे । शरीर को सहाग देने के लिये जो पाटिया लिया

हो वह यदि डीमक आदि से भरा हुआ हो तो उसको त्याग कर दूसरा जीव रहित पट्टिया प्राप्त करे । जिससे पाप होता हो ऐसा कोई अवलम्बन न ले । सब दुःखो को सहन करे और उससे अपनी आत्मा को उत्कृष्ट बनावे । सत्यवादी, ओजस्वी, पागामी, कलहहीन, वस्तु स्वरूप को समझने वाला ससार में नहीं फंसा हुआ वह भिक्षु क्षणभंगुर शरीर की ममता त्याग कर और अनेक संकट सहन कर के जिनशासन में विश्वास रखकर भय को पार कर जाता है । यह उसका मरण का अवसर है, यह उसके संसार को नष्ट करने वाला है वही विमोहायतन (धर्माचार) हित, सुख, जेम और सदा के लिये निश्चयस्वरूप है । [१७, १८, २२२]

उससे भी उत्कृष्ट निम्न मरण विधि है । वह घास मांग ला कर बिछावे, उस पर बैठ कर शरीर के समस्त व्यापार और गति का त्याग कर दे । दूसरी अवस्थाओं से यह उत्तम अवस्था है । वह ब्राह्मण अपने स्थान को बराबर देख कर अनशन स्वीकार करे । और सब अंगों का निरोध होता हो तो भी अपने स्थान से भ्रष्ट न हो । मेरे शरीर में दुःख नहीं है, ऐसा समझ कर समाधि में स्थिर रहे और काया का सब प्रकार से त्याग करे । जीवन भर संकट और आपत्तियाँ आँवेंगी ही, ऐसा समझ कर शरीर का त्याग करके पाप को अटकाने वाला प्रज्ञावान भिक्षु सब सहन करे । क्षणभंगुर ऐसे शब्द आदि कामों में राग न करे और कीर्ति को अचल समझ कर उन में लोभ न रखे । कोई देव उसको मानुषिक भोगों की अपेक्षा शाश्वत दिव्य वस्तुओं से ललचावे तो ऐसी देवमाया पर श्रद्धा न रखे और उसका स्वरूप समझ कर उसका त्याग करे । सब अर्थों में अमर्द्धित और समाधि में प्राणाय के पार पहुँचाने

वाला भिच्चु तित्तिवा को उत्तम विमोहरूप (मोह से मुक्ति-विमोह) और हितरूप समझकर समाधि में रहे । [२२६, १६-२५]

क्रमशः वर्णन की हुई इन तीनों मरण विधियों को सुनकर, उनको अपूर्व जान कर और प्रत्येक तप के बाह्य और आभ्यन्तर दोनों भेदों को ध्यान में रख कर धीरे, वसुमान, प्रज्ञावान और बुद्ध पुरुष धर्म के पारगामी होते हैं । [१-२]

टिप्पणी—कामवासना के लिये मूलमें 'शीतस्पर्श' शब्द है । शीतस्पर्श शब्द से ठंड-गरमी और स्त्री के उपद्रव का अर्थ लिया जाता है । यदि कोई दुष्ट स्त्री भिच्चु को घर में ले जाकर फंसा ले और वहां से भ्रष्ट हुए विना बाहर आना शक्य न हो तो वह चाहे जिस प्रकार से वही आत्मघात कर ले, अथवा दुर्बल शरीर का भिच्चु ठंड-गरमी या रोगों के दुखों को बहुत समय तक सहन न कर सकता हो तो भी आत्मघात कर ले । जैन शास्त्र में भक्तपरिज्ञा, इत्वरित और पादपोषगमन मरणविधियाँ विहित हैं । पर ये दृढ सकल्प वाले मनुष्यों के लिये हैं । सूत्र २१५ से १०-११ तक ये भक्तपरिज्ञा मरण विधि का वर्णन है । इत्वरित मरण का वर्णन सूत्र २२१ से २२२ तक है और २२५-२२६ में पादपोषगमन (वृषके समान निश्चेष्ट होना) का वर्णन है ।



नौवां अध्ययन

—(०)—

भगवान महावीर का तप



[उपधान]

श्री सुधर्मास्वामी कहने लगे—

हे आयुमान् जंतु ! श्री महावीर भगवान की तपश्चर्या का वर्णन जैसा मैं ने सुना है वैसा ही तुम्हें कहता हूँ । उन श्रमण भगवान ने प्रयत्नशील हो कर, संसार के दुखों को समझकर प्रव्रज्या स्वीकार की और उसी दिन हेमन्त ऋतु की सर्दी में ही बाहर निकल पड़े ! उस कड़कडानी सर्दी में वस्त्र से शरीर को न टकने का उनका संकल्प दृढ़ था और जीवनपर्यंत कठिन से कठिन कष्टों पर विजय पाने वाले भगवान के लिये यही उचित था । [१-२]

श्रमण से विचरने वाले भगवान को छोटे-बड़े अनेक जंतुओं ने चार महिने तक बहुत दुख दिये और इनका मांस लोही चूसा । [३]

तेरह महिने तक भगवान ने वस्त्र को कन्धे पर ही रख छोड़ा । फिर दूसरे वर्ष शिशिर ऋतु के आधी वीत जाने पर उसको छोड़ कर भगवान सम्पूर्ण 'अचेलक'—वस्त्ररहित हुए । [४, २२]

वस्त्र न होने पर भी और सख्त सर्दी में वे अपने हाथों को लम्बे रखकर ध्यान करते । सर्दी के कारण उन्होंने किसी भी दिन हाथ बगलमें नहीं डाले । कभी कभी वे सर्दी के दिनों से छाया में बैठकर ही ध्यान करते तो गर्मी के दिनों में धूप में बैठ कर ध्यान करते । [२२, १६-७]

उम समय शिशिर ऋतु में पाला गिरने या हवा चलने के कारण अनेक लोग तो कांपते ही रहते और कितने ही साधु उम समय बिना हवा के स्थानों को ढूँढते, कितने ही कपड़े पहिनने का विचार करते और कितने ही लकड़ी जलाते ! उस समय जितेन्द्रिय और आकांक्षा रहित वे भगवान इस सर्दी को खुले में रह कर सहन करते किसी समय सर्दी के असह्य हो जाने पर भगवान सावधानी से रात्रि को बाहर निकलकर कुछ चलते । [३६-३८]

वस्त्र रहित होने के कारण नृण के स्पर्श, ठंड-गरमी के स्पर्श और डांस-मच्छर के स्पर्श-इस प्रकार अनेक स्पर्श भगवान महावीर ने समभाव से सहन किये थे । [४०]

भगवान चलते समय आगे-पीछे पुरुष की लम्बाई जितने मार्ग पर दृष्टि रख कर, टेढ़े-मेढ़े न देखकर मार्ग की तरफ ही दृष्टि रख कर सावधानी से चलते, कोई बोलता तो वे बहुत कम बोलते और दृष्टि स्थिर करके अन्तर्मुख ही रहते । उनको इस प्रकार नश देख कर और उनके स्थिर नेत्रों से भयभीत हो कर लडको का भुंड उनका पीछा करता और चिह्लाता रहता था । [५, २१]

ऊजाड़ घर, सभास्थान प्याऊ और हाट—ऐसे स्थानों में भगवान अनेक बार ठहरते, तो कभी लुहार के स्थान पर तो कभी धर्मशालाओं में बगीचों में वगैरे में या नगर में ठहरते थे । इस प्रकार श्रमण ने तेरह वर्ष से अधिक समय बिताया । इन वर्षों में रात-दिन प्रयत्नशील रह कर भगवान अग्रप्रसन्न होकर समाधि पूर्वक ध्यान करते, पूरी नींद न लेते, नींद मालूम होने पर उठ कर ब्राह्मणों को जागृत करते । किसी समय वे करवट से हो जाते, पर वह निद्रा की इच्छा से नहीं । कदाचित् निद्रा या ही जानी तो वे उसको

प्रसाद बढ़ाने वाली समझ कर, उठ कर दूर करते । कभी कभी मूर्हत तक रात में चक्रमण करते रहते । [२४-२६]

उन स्थानों पर भगवान को अनेक प्रकार के भयंकर संकट पड़े । उन स्थानों पर रहने वाले जीव-जन्तु उनको कष्ट देते । नीच मनुष्य भी भगवान को बहुत दुःख देते । कड़े चार गांव के चौकीदार हाथ में हथियार ले कर भगवान को सताते । कभी कभी विषय वृत्ति से स्त्रियों या पुरुष भगवान को तंग करने । रात में अकेले फिरने वाले लोग वहां भगवान को अकेला देख कर उनसे पूछताछ करते । भगवान के जवाब न देने पर तो वे चिढ़ ही जाते थे । कोई पूछता कि यह कौन है ? तो भगवान कहते, ' मैं भिक्षु हूँ । अधिक कुछ न कहने पर वे भगवान पर नाराज हो जाते पर भगवान तो ध्यान ही करते रहते । [३०-३१, ३४-३५]

जहां दूसरे अनेक लोग ठहरते थे, वहां रहने पर भगवान स्त्रियों की तरफ दृष्टि तक न करते, परन्तु अन्तर्मुख रह कर ध्यान करते थे । पुरुषों के साथ भी वे कोई सम्बन्ध न रख कर ध्यान में ही मग्न रहते थे । किसी के पूछने पर भी वे जवाब न देते थे । कोई उनको प्रणाम करता तो भी वे उनकी तरफ न देखते थे । ऐसे समय उनको मूढ़ मनुष्य मारते और सताते थे । वे यह सब समभाव से सहन करते थे । इसी प्रकार आर्याण, नाटक, गीत, ढंड्युद्ध, सुष्टियुद्ध और परस्पर कथावार्ता में लगे हुए लोगों की ओर कोई उत्सुकता रखे बिना वे शोकरहित ज्ञातपुत्र मध्यस्थ दृष्टि ही रखते थे । अमह्य दुःखों को पार करके वे मुनि समभाव से पराक्रम करते थे । इन संकटों के समय वे किसी की गरण नहीं ढूंढते थे । [६-१०]

भगवान दुर्गस प्रदेश लाह में, वज्रभूमि और शुभ्रभूमि में भी विचरे थे । वहां उनको एकदम बुरी से बुरी शय्या और आसन

काम में लाने पड़े थे। वहा के लोग भी उनको बहुत मारते, खाने को रूखा भोजन देते और कुत्ते काटते थे। कुछ लोग उन कुत्ते को रोक्ते थे तो कुछ लोग कुत्ते को उन पर हुड़ाकर कटवाते थे। कुत्ते काट न खावें इस लिये दूसरे श्रमण हाथ में लकड़ी लेकर फिरते थे। कितनी ही बार कुत्ते काटते और भगवान की प्रांस पेशियो को खींच डालते थे। इतने पर भी ऐसे दुर्गम लाढ़ प्रदेश में हिंसा का त्याग करके और शरीर की ममता छोड़ कर वे अनगार भगवान सब संकटो को समभाव से सहन करते और उन्होने संग्राम में आने रहने वाले विजयी हाथी के समान इन संकटो पर जय प्राप्त की। अनेक बार लाढ़ प्रदेश में बहुत दूर चले जाने पर भी गांव ही न आता, कई बार गांव के पास आते ही लोग भगवान को बाहर निकाल देने और मार कर दूर कर देते थे, कई बार वे भगवान के शरीर पर बैठ कर उनका मांस काट लेते थे, कई बार उन पर धूल फेंकी जाती थी, कई बार उनको ऊपर से नीचे डाल दिया जाता था, तो कभी उनको आरुन पर से धकेल दिया जाता था। [४१-५३]

दीक्षा लेने के पहिले भी भगवान् ने दो वर्ष से अधिक समय से ठंडा पानी पीना छोड़ दिया था। पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, कांडे, वनस्पति और त्रस जीव मच्चित्त हैं ऐसा जान कर भगवान उनको बचा कर विहार करते थे। स्थावर जीव त्रसयोनि में आते हैं और त्रस जीव स्थावर योनि में जाते हैं, अथवा सब योनियो के बाल जीव अपने अपने कर्मों के अनुसार उन उन योनियो में भटकते रहते हैं, ऐसा ममक कर भगवान ने यह निश्चित किया कि उपाधि वाले बाल जीव सदा बन्धन को प्राप्त होते हैं। फिर भगवान ने सब प्रकार से कर्मका स्वरूप जान कर पाप का त्याग किया [११-१५]

कर्म के दो प्रकार [१ ऐर्यपथिक—चलने-फिरने आदि आवश्यक क्रियाओं से होने वाली हिंसा के कारण बंधने वाला कर्म जो बंध होते ही नाशको प्राप्त हो जाता है। २ सांपगथिक—कपाय के कारण बंधने वाला कर्म जिसका फल अवश्य ही भोगना पड़ता है।] जान कर असाधारण ज्ञानवाले मेधावी भगवान ने कर्मों का नाश करने के लिये अनुपम क्रिया का उपदेश दिया है। प्रवृत्ति और तज्जन्य कर्म-बन्धन को समझ कर भगवान स्वयं निर्दोष अहिंसा से प्रवृत्त होते थे। भगवान ने स्त्रियों को सर्व पाप का कारण समझ कर उनका त्याग किया था। वस्तु का स्वरूप बराबर समझ कर महावीर कभी पाप नहीं करते थे, दूसरों से न कराते थे, करनेवाले को अनुमति नहीं देते थे। [१६-१७, ६१]

भगवान ने अपने लिये तैयार किया हुआ भोजन कभी नहीं लिया। इसका कारण यह कि वे इसमें अपने लिये कर्मबन्ध समझते थे। पापमात्र का त्याग करने वाले भगवान निर्दोष आहार-पानी प्राप्त करके उसका ही उपयोग करते थे। वे कभी भी दूसरे के पात्र में भोजन नहीं करते थे और न दूसरो के वस्त्र ही काम में लाते थे। मान-अपमान को त्याग कर, किसी की शरण न चाहने वाले भगवान भिक्षा के लिये फिरते थे। [१८-१९]

भगवान आहार-पानी के परिमाण को बराबर समझते थे, इस कारण वे कभी रसो में ललचते न थे और न उसकी इच्छा ही करते थे। चावल, दैर का चूरा और खिचड़ी को रूखा खाकर ही अपना निर्वाह करते थे। भगवान ने आठ महिने तक तो इन तीनों चीजों पर निर्वाह किया। भगवान महिना, आधा महिना पानी तक न पीते थे। इस प्रकार वे दो महिने या छै महिने तक विहार ही

करते रहते थे। सदा आकांक्षा रहित रहने वाले भगवान किसी समय ठंडा अन्न खाते, तो किसी समय छै, आठ, दस या बारह भक्त के वाद भोजन करते थे। [५८-६०]

गांव या नगर में जाकर वे दूसरो के लिये तैयार किया हुआ आहार सावधानी से खोजते थे। आहार लेने जाते समय मार्ग में भूखे प्यासे कौए आदि पक्षियों को बैठा देखकर, और ब्राह्मण, श्रमण, भिखारी अतिथि, चाडाल, कुत्ते, बिल्ली आदि को घरके आगे देखकर, उनको आहार मिलने में बाधा न हो या उनको अप्रीति न हो, इस प्रकार भगवान वहाँ से धीरे धीरे चले जाते और दूसरे स्थान पर अहिंसा पूर्वक भिक्षा को खोजते थे। कई बार भिगोया हुआ, सूखा या ठंडा आहार लेते थे, बहुत दिनों की खिचड़ी, दाकले, और पुलाग (निस्सार खाद्य) भी लेते थे। ऐसा भी न मिल पाता तो भगवान शांतभाव से रहते थे। [६२-६७]

भगवान नीरोग होने पर भी भरपेट भोजन न करते थे और न औषधि ही लेते थे। शरीर का स्वरूप समझ कर भगवान उसकी शुद्धि के लिये संशोधन (जुलाब), वमन, विलेपन, स्नान और दंत प्रक्षालन नहीं करते थे। इसी प्रकार शरीर के आराम के लिये वे अपने हाथ-पैर नहीं दबवाते थे। [५४-५५]

कामसुखो से इस प्रकार विरत होकर वे अबहुवादी ब्राह्मण विचरते थे। उन्होने कपायो की ज्वाला शांत कर दी थी और उनका दर्शन विशद था। अपनी साधना में वे इतने निमग्न थे कि उन्होने कभी अपनी आंख तक न ममली और न शरीर को ही खुजाया। रति और अरति पर विजय प्राप्त करके उन्होने इस लोक के और

देव-यज्ञ आदि के अनेक भयंकर संकटो, अनेक प्रकार के शब्द और गन्ध को समभाव से सहन किया था । [५६, ११, २०, ३२-३३]

भगवान अनेक प्रकार के ध्यान अचंचल रह कर अनेक प्रकार के आसन से करते थे और समाधिद्वेष तथा आकांक्षा रहित हो कर भगवान ऊर्ध्व, अधो और तिर्यग् लोक का विचार करते थे । कपाय, लालच, शब्द, रूप और मूर्छा से रहित होकर साधकवृत्ति में पराक्रम करते हुए भगवान जरा भी प्रमाद न करते थे । अपने आप संसार का स्वरूप समझ कर आत्मशुद्धि में सावधान रहते और इसी प्रकार जीवन भर शांत रहे । [६७-६८]


मुमुक्षु इसी प्रकार आचरण करते है, ऐसा मैं कहता हूं । [७०]





* आचारांग सूत्र *

द्वितीय खण्ड



पहिला अध्ययन

—(०)—

भिक्षा

२२३६

श्री सुधर्मास्वामीने कहा—

नव विषयो में रागद्वेष से रहित हो कर अपने कल्याण में तत्पर रह कर सदा संयम से रहने में ही भिक्षु और भिक्षुणी के आचार की सम्पूर्णता है। भिक्षा में कर्मबन्धन का कारण विशेष सम्भव है इस लिये भगवान् महावीर ने इस सम्बन्ध में बड़ी गम्भीर शिक्षा दी है। उसको मैं कह सुनाता हूँ, तुम सब सुनो। [६]

भिक्षा के लिये कहाँ जावे ?

भिक्षु, (सर्वत्र इस शब्द में भिक्षु और भिक्षुणी दोनों को लिया गया है) उग्रकुल (आरक्षक क्षत्रिय), भोगकुल (पूज्य-श्रेष्ठ कुल), राजन्य कुल (मित्रराजाओं के कुल), क्षत्रिय कुल, इच्छाकुल (श्री आदीश्वर का कुल), हरिवंशकुल (श्री नेमिनाथ का कुल), और ग्वाल, वैश्य, नाइ (मूल में 'गंडाग') सुतार और बुनकर आदि के अतिरिक्त और अर्निदित कुलों में भिक्षा मांगने जावे। [११]

भिक्षा मांगने कहाँ न जावें ?

परन्तु चक्रवर्ती आदि क्षत्रिय, राजा, ठाकुर, राजकर्मचारी और राजवंशियों के यहां से भिक्षा न ले, फिर भले ही वे शहर में रहते

हो, बाहर पडाव डाले हो, यात्रा में हो, या उनके यहां से निमन्त्रण मिला हो या न मिला हो । [२१]

टिप्पणी—ये सब अतिरस्कृत कुल है पर वहाँ दूम्मे दोष होने के कारण इनका निषेध किया गया है ।

और, जिन घरों पर सदा अन्नदान दिया जाता हो, प्रारम्भ में देव आदि के निमित्त अग्रपिंड अलग रख दिया जाता हो या भोजन का आधा या चौथा भाग दान में दिया जाता हो और इनके कारण वहां अनेक याचक सदा आते हो, वहां भिक्षा के लिये कभी न जावे । [१६]

और, भिक्षा के लिये जाते हुए मार्ग में गढ, टेकरी, गड्डे, खाई, कोट, दरवाजे या अर्गला पड़ती हो तो उस मार्ग पर वह भिक्षा के लिये न जावे । यह मार्ग सीधा और छोटा हो तो भी इस पर न जावे क्योंकि भगवान ने इस मार्ग से जाने में अनेक दोष बताये हैं । दूसरा रास्ता हो तो भले ही उधर जावे । जिस मार्ग से जाने से गिर पड़े और लग जावे या वहां पड़े हुए मल-मूत्र आदि शरीर से लग जावे, उधर न जावे । यदि कभी ऐसा हो जाय तो शरीर को सजीव, गीली मिट्टी, पत्थर, ढेले या लकड़ी आदि से न पोछे परन्तु किसी के पास से निर्जीव घास, पत्ते, लकड़ी या रेती मांग लावे और एकान्त में निर्जीव स्थान देख कर, उसे साफ कर वहां साधवानी से शरीर को पोछ ले । [२६]

इसी प्रकार जिस मार्ग में मरकने भयंकर पशु खड़े हो अथवा गड्डे, कीले, कांटे, दरार या कीचड हो अथवा जहां सुर्गे, कौए आदि पक्षी और सुअर आदि जानवर बलि खाने को इकट्ठे हो उस मार्ग

से होकर भी भिक्षा के लिये न जावे। पर दूसरा मार्ग लगवा हो तो भी उम्मी से जावे। [२७, २९]

भिक्षा मांगने किस प्रकार जावे ?

भिक्षु भिक्षा मांगने जाते समय अपने वस्त्र, पात्र, रजोहरण आदि सर्व साधन (धर्मोपकरण) साथ में ले जावे। यही नियम स्वाध्याय करने जाते समय, मलमूत्र करने जाते समय या दूसरे गांव जाते समय के लिये भी है। परन्तु जब दूर तक पानी बरसता जान पड़े या दूर तक कुहरा गिरता दिखे या जोरकी आंधी के कारण धूल उड़नी हो या अनेक जीव-जन्तु इधर-उधर उड़ते दिखें तो सब साधन साथ में लेकर भिक्षा मांगने या स्वाध्याय करने को न निकले। [१६-२०]

भिक्षा मांगने किस प्रकार न जावे ?

भिक्षु भिक्षा मांगने किसी अन्य सम्प्रदाय के मनुष्य के साथ, गृहस्थ के साथ या अपने ही धर्म के कुशील स्वाधु के साथ न जावे आवे और उनको आहार न दे और न दिलावे। यही नियम स्वाध्याय, शौच और गांव जाने के लिये भी है। [४-५]

भिक्षु भिक्षा मांगने जाते समय गृहस्थ के घरका डाल-भाकडो से बन्द दरवाजा उसकी अनुमति के बिना, जीवजन्तु देखे बिना खोल कर अन्दर न जावे। उसकी अनुमति लेकर और देखभाल कर ही भीतर जाना और बाहर आना चाहिये। [२८]

भिक्षु भिक्षा मांगने जाते समय गृहस्थ के घर श्रमण, ब्राह्मण आदि याचको को अपने से पहिले ही भीतर देख कर उनको लाव कर भीतर न जावे परन्तु किसी का आनाजाना न हो ऐसी प्रलग

जगह से सबकी दृष्टि से बच कर खड़ा रहे, और मालुम होने पर कि वे सब आहार लेकर अथवा न मिलने से वापिस चले गये हैं, तब सावधानी से भीतर जा कर भिन्ना ले। नहीं तो हो सकता है, वह गृहस्थ मुनि को आया देख कर उन सबको अलग करके अथवा उसके लिये फिर भोजन तैयार करके उनको आहार दे, इस लिये साधु ऐसा न करे। [२६-३०]

भिन्नु गृहस्थ के यहां भिन्ना मागने समय उसके दरवाजे से लग कर खड़ा न हो, उसके पानी डालने या कुह्ला करने के स्थान पर खड़ा न हो, उसके स्नान करने या मल त्याग के स्थान पर दृष्टि गिरे इस प्रकार वा उनके रास्ते में खड़ा न हो, तथा घर की खिड़कियों या कामचलाऊ आड़ या छिद्र अथवा पनटेरी की तरफ हाथ उठाकर या इशारा करके ऊंचा-नीचा हो कर न देखे। वह गृहस्थ से (ऐसा-ऐसा दो) अंगुली बता कर न मांगे। उसको इशारा कर, धमका कर, खुजला कर या नमस्कार करके कुछ नहीं मांगना चाहिये और यदि वह कुछ न दे तो भी कठोर वचन नहीं कहना चाहिये। [३०]

भिक्षा मांगने कब न जावे ?

गृहस्थ के घर भिन्ना मागने जाने पर मालुम हो कि अभी गायें ढोही जा रही है, भोजन तैयार हो रहा है और दूसरे याचको को अभी कुछ नहीं दिया गया तो भीतर न जावे परन्तु किसी की दृष्टि न गिरे, इस प्रकार अलग खड़ा रहे; फिर मालुम होने पर कि गायें ढोह ली गईं, भोजन तैयार हो चुका और याचको को दिया जा चुका है तब सावधानी से जावे। [२२]

किसी गाव में वृद्धावस्था के कारण स्थिरवास करने वाले (समाणा) या मास-मास रहने वाले (वसमाणा) भिन्नक, गांव-गांव फिरने वाले भिन्नक को ऐसा कहे कि, यह गांव बहुत छोटा है अथवा बड़ा होने पर भी सूतक आदि के कारण अनेक घर भिन्ना के लिये बन्द है, इस लिये तुम दूसरे गाव जाओ। तब भिन्न उस गाव में भिन्ना के लिये न जा कर दूसरे गाव चला जावे। [२३]

गृहस्थ के घर भिन्ना के लिये जाने पर ऐसा जान पड़े कि यहा मांस-मछली आदि का कोई भोज हो रहा है और उसके लिये वस्तुएँ ली जा रही हैं मार्ग में अनेक जीवजन्तु, बीज और पानी पड़ा हुआ है और वहा श्रमण, ब्राह्मण आदि याचको की भीड़ लगी हुई है या होने वाली है और इस कारण वहां उसका जाना आना वाचन और मनन निर्विघ्नरूप से नहीं हो सकता तो वह वहां भिन्ना के लिये न जावे। [२०]

भोज

भिन्न यह जान कर कि अमुक स्थान पर भोज (संखडि) है, दो कोस से बाहर उसकी आशा रखकर भिन्ना के लिये न जावे परन्तु पूर्व दिशा में भोज हो तो पश्चिम में चला जावे, पश्चिम में हो तो पूर्व में चला जावे। इसी प्रकार उत्तर और दक्षिण दिशा के लिये भी करे। संक्षेप में, गांव, नगर या किसी भी स्थान में भोज हो तो वहां न जावे। इसका कारण यह कि भोज में उसको विविध दोष युक्त भोजन ही मिलेगा, अलग अलग घरसे थोड़ा थोड़ा इकट्ठा किया हुआ भोजन नहीं। और वह गृहस्थ भिन्न के कारण छोटे दरवाजे वाले स्थान को बड़े दरवाजे वाला करेगा या बड़े दरवाजे वाले

को छोटा, सम स्थान को विपम या विपम को सम करेगा; हवा वाले स्थान को बन्द या बन्द को हवा वाला करेगा, और साधु को अकिंचन मान कर स्थानक (उपाश्रय) के भीतर और बाहर की वनस्पति कटवा कर डालेगा और उसके लिये कुछ विद्या देगा। इस लिये निर्ग्रन्थ संयमी मुनि (जात कर्म, विवाहादि आदि) पहिले किये जाने वाले या (श्राद्ध आदि) पीछे किये जाने वाले भोजो में भिक्षा के लिये न जावे। [१३]

और, भोज में अधिक और घृष्ट भोजन खाने-पीने से बनावर न पचने के कारण दस्त, उल्टी और शूल आदि रोग भी हो जाते हैं। संभव है कि वह एकत्रित हुए गृहस्थो, गृहस्थो की स्त्रियो और दूसरे भिक्षुओ के साथ मदिरा पी कर वहीं नशे में चूर होकर गिर जावे और अपने स्थान पर भी न जा सके और नशे में अपना भान भूल कर स्वयं स्त्री आदि में आसक्त बने या स्त्री आदि उसको लुभा कर योग्य स्थान और समय देखकर मैथुन में प्रवृत्त करावे। [१४-१५]

और संभव है वहां अनेक याचको के आजाने के कारण भीड़ भाड़, धक्कामुक्का, मारपीट भी हो जाय; उससे हाथ-पैर में लग जावे, मार पड़े, कोई धूल डाले या पानी छींटे। वह गृहस्थ बहुत से याचको का आया देखकर उनके लिये फिर भोजन तैयार करावे या वहां इनमें भोजन के लिये छीना-भूपटी मच जावे।

इस प्रकार भोज में भगवान् ने अनेक दोष बताये हैं। इस लिये भिक्षु भोज में भिक्षा मागने न जावे, पर थोड़ा-थोड़ा निर्दोष आहार अनेक घरों से माग ला कर खावे। [१७]

कैसा आहार ले—कैसा न ले ?

गृहस्थ जिम पात्र में या हाथ में आहार देने के लिये लाया हो वह बागीक जन्तु, बीज या वनस्पति आदि सजीव वस्तु से मिश्रित या सजीव पानी से गीला हो, अथवा उस पर सजीव धूल पड़ी हुई हो तो उसको द्रोपित जानकर भिक्षु न ले। यदि भूल से ऐसा आहार लेने में आ जावे तो उसको लेकर एकान्त स्थान में, वाड़े में अथवा स्थानक में जावे और निर्जीव स्थान पर बैठ कर उस आहार में से जीवजन्तु वाला भाग अलग कर दे तथा जीवजन्तु घीनकर अलग निकाल दे, बाकी का आहार संयमपूर्वक खा-पी ले और यदि वह खाने-पीने के योग्य न जान पड़े तो उसको एकान्त में ले जाकर जली हुई जमीन पर या हड्डी, कचरे, छिलके आदि के धूरे पर देस जाल कर संयमपूर्वक डाल दे। [१]

भिन्ना के समय यदि ऐसा जान पड़े कि कोई धान्य, फल, फली आदि चाकू आदि से या अग्नि से तोटी, कतरी या पकाई न जाने से सारी और सजीव है, और उनकी उगने की शक्ति अभी नष्ट नहीं हुई है तो गृहस्थ के देने पर भी भिक्षु उन वस्तुओं को न ले। पर यदि वे पदार्थ पकाये गये हो, सेके गये हो, तोड़े-कतरे गये हो और निर्दोष मालुम पड़े तो ही उनको ले। [२]

पोहे, पुरपुरे, धानी आदि एक ही बार भूने जाने पर सजीव मालुम पड़ते हो तो, उनको भी न ले, पर दो-तीन बार भूने जाने पर पूरी तरह निर्जीव हो गये हो तो ही ले। [३]

मुनि कंद, फल, कोपल, मौर और केले आदि का गिर तथा अग्रबीज, शाखाबीज या पर्वबीज आदि वनस्पतियों चाकू आदि से

कतरी होने से निर्जीव होगड़े हो तो ही ले । इसी प्रकार उंवरी, बड, पीपल, पीपली आदि के चूर्ण कच्चे या मम पिसे हुए, सजीव हो तो न ले । अधपकी हुई शाकभाजी, या सड़ी हुई शहद, मद्य, घी, खोल, आदि वस्तुएँ पुरानी हो जाने के कारण उनमें जीवजन्तु हो तो न ले । अनेक प्रकार के फल, कंद आदि चाकू से कतरे हुए निर्जीव हो तो ही ले । इसी प्रकार अन्न के दाने, दाने वाली रोटी, चावल, चावल का आटा, तिर्ही, तिह्ली का चूरा और तिलपापडी आदि निर्जीव न हो तो न ले । [४८]

भिन्नु या भिन्नुणी भिन्ना लेते समय गृहस्थ के घर किसी को जीमते देख कर उससे कहे कि, 'हे आयुष्मान् ! इस भोजन मे से मुझे कुछ दो ।' यह सुन कर वह अपने हाथ वर्तन या कड़ड़ी ठंडे सजीव पानी से अथवा ठंडा हो जाने पर सजीव हुए गरम पानी से धोने लगे तो भिन्नु को कहना चाहिये कि, 'हाथ या वर्तन को सजीव पानी से धोए बिना ही तुमको जो देना हो दो ।' इतने पर भी वह हाथ आदि धोकर ही देने लगे तो भिन्नु उसको सजीव और सद्योप मान कर न ले । इसी प्रकार यदि गृहस्थ ने भिन्नु को भिन्ना देने के लिये ही हाथ धोये न हो पर वो ही वे गीले हो अथवा मिट्टी या अन्य सजीव वस्तु से वे भरे हुए हो तो भी ऐसे हाथो से दिया जाने वाला आहार वह न ले । परन्तु यदि उसके हाथ ऐसी किसी चीज़ से भरे हुए न हो तो वह निर्जीव और निर्दोष आहार को ले ले । [३३]

पोहे, ठिँह, चावल आदि को गृहस्थ ने जीवजन्तु, बीज या वनस्पति जैसी सजीव वस्तु लगी हुई शिला पर बाटा हो, बांटता हो या बाटने वाला हो, अथवा हवा मे उनको उफना हो, उफनता हो

या उफनने वाला हो तो भिन्नु उनको सजीव और सड़ोप जान कर न ले । इसी प्रकार ऐसी शिला पर पीसे गये व्रीड नमक और सुमुद्रनमक को भी न ले । [३४-३५]

गृहस्थ के घर आग पर रखा हुआ आहार भी भिन्नु सड़ोप जान कर दिये जाने पर भी न ले, इसका कारण यह कि गृहस्थ भिन्नु के लिये उसमें से आहार निकालते या टालते समय, उस वर्तन को हिलाने से अन्निकाय के जीवों की हिंसा करेगा । अथवा आग को कम-ज्यादा करेगा । [३६-३८]

गृहस्थ दीवार, खम्भे, खाट, मंजिल आदि ऊंचे स्थान पर रखा हुआ आहार लाकर भिन्नु को देने लगे तो वह उसको सड़ोप जान कर न ले, इसका कारण यह कि ऐसे ऊंचे स्थान से आहार निकालते समय पाट, नसैनी आदि लगा कर चढ़ने लगे और गिर जाय तो उसके हाथ-पैर में लग जाय और दूसरे जीवजन्तु भी मरें । इसी प्रकार कोठी, खो आदि आदि स्थान से आहार लाते समय भी गृहस्थ को ऊंचा, नीचा और टेढ़ा होना पड़ता हो तो उसको भी न ले । [३७]

मिट्टिसे लीप कर बंध किया हुआ आहार भी न ले । क्योंकि उसको निकालते समय और फिरसे लीप कर बंध करते समय अनेक पृथ्वी, अग्नि, वायु, वनस्पति और त्रस जीवों की हिंसा होनी है । सजीव पृथ्वी, पाणी, वनस्पति या त्रस जीवों पर रक्खा हुआ आहार भी न ले । [३८]

आहार के अत्यन्त गरम होने से गृहस्थ उसको सूपड़े, पंखे, पत्ते, डाली, पींडे, कपड़े, हाथ या मुंह से फूक कर या हवा करके

ठंडा कर देने लगे तो भिक्षु न ले, परन्तु पहिले ही से कह दे कि ऐसा क्रिये बिना ही आहार देना हो तो दो । [३९]

मुनि गन्ने की गाठ, गांठ वाला भाग, रस निकाल लिये हुए टुकड़े, गन्ने का लम्बा हिस्सा या उमका टुकड़ा अथवा मूंग आदि की बफी हुई फली आदि वस्तुएँ जिनमे खाने का काम और छोड़ने का अधिक हो, को न ले । [४०]

(भिक्षु ने खांड मांगी हो और) गृहस्थ (भूल से) समुद्रनमक या वीड नमक लाकर दे, और भिक्षु को मालुम हो जाय तो न ले । पर यदि गृहस्थ उसको जल्दी से पात्र में डाल दे और वाद में भिक्षु को मालुम हो जाय तो वह दूर चल जाने के बाद भी वापिस उस गृहस्थ के पास आवे और उससे पूछे कि, तुमने मुझे यह जानते हुए दिया या अजानते हुए ? यदि वह कहे कि, “मैं ने जानते हुए तो नहीं दिया पर अब राजी से आपको देता हूँ ।” इम पर वह उसको खाने के काम में ले ले । यदि बड़े तो अपने पास के समान धर्मी मुनियो को दे दे । ऐसा संभव न हो तो अधिक आहार के नियम से उसको निर्जीव स्थान पर डाल दे । [४१]

जिस आहार को गृहस्थ ने एक या अनेक निर्यन्त्र साधु या साध्वी के उद्देश्य से या किसी श्रमणब्राह्मण आदि के उद्देश्य से जीवो (हृ काय) की हिंसा करके नैयर क्रिया हो, खरीडा हो, माग लाया हो, छीन लाया हो, (दूसरे के हिस्से का) समति बिना लाया हो, मुनि के स्थानपर घर से, गांव से ले जाकर दिया हो तो उस सरोप आहार को भिक्षु कत्रापि न ले ।

जिस आहार को गृहस्थ ने गिन कर नहीं पर यो ही श्रमण ब्राह्मणों के लिये ऊपर लिखे अनुसार तैयार किया हो, और उसको सबको देने के बाद गृहस्थने अपने लिये न रखा हो, या अपने खाने के लिये बाहर न निकाला हो या खाया न हो तो न ले। परन्तु सबको दिये जाने के बाद गृहस्थ ने अपने लिये समझकर ही रखा हो तो निर्दोष जानकर उसको ले ले। [६-८]

इसी प्रकार अष्टमी के पोषध व्रत के उत्सव पर या पाक्षिक, मासिक, द्विमासिक चातुर्मासिक या छु'मासिक उत्सव पर अथवा ऋतु के या उसके प्रथम या अन्त के दिन, अथवा मेला, श्राद्ध या देवदेवी के महोत्सव पर श्रमण-ब्राह्मण आदि याचकों को एक या अनेक हंडी में से, कुंभी से से, टोकरी या थैली में से गृहस्थ आहार परोसता हो, उसको भी जब तक सबको देने के बाद उस गृहस्थ ने उसको अपना ही न समझ लिया हो, तब तक उसको सद्योप समझ कर न ले। पर सबको दिये जाने के बाद गृहस्थ ने उसको अपना समझ कर रखा हो तो उसको निर्दोष समझ कर ले ले। [१०, १२]

कितने ही भद्र गृहस्थ ऐसा समझ कर कि ज्ञान, गील, व्रत, गुण, संवर, संवम और ब्रह्मचर्यधारी उत्तम मुनि उनके लिये तैयार किये हुए आहार को नहीं लेते, तो हम अपने लिये ही आहार तैयार करके उनको दे दें और अपने लिये फिर तैयार कर लेंगे। मुनि इस बात को जानने पर उस आहार को सद्योप समझ कर न ले। [४६]

भिक्षा के समय मुनि के लिये कोई गृहस्थ उपकरण या आहार तैयार करने लगे तो वह उसको तुरन्त ही रोक दे, ऐसा भी

न सोचे कि अभी तो उमका नैयार करने दो पर लेते समय मना कर दूंगा । और मना करने पर भी गृहस्थ आहार-पानी नैयार करके देने लगे तो उसे कदापि न ले [१०]

भिक्षु, ऐसा समझकर कि अमुक स्थान पर विवाह-मृत्यु के कारण भोज है, और वहाँ अवश्य ही भोज है, ऐसा निश्चय करके भिक्षा के लिये वहाँ उत्सुकता से दौड़ पड़े तो वह दोष का भागी है । परन्तु योग्य काल में अलग अलग घर में बौड़ा थोड़ा निर्दोष आहार वह माग लावे । [१६]

गृहस्थ के घर भिक्षा मांगने पर आहार के निर्दोष होने में शंका हो तो उसे भिक्षु स्वीकार न करे । [१८]

गृहस्थ के घर अनेक वस्तुएँ तली जा रही हो तो जल्दी जल्दी जा कर उनको न मांगे, किमी बीमार मुनि के लिये जाना ही अलग बात है । [१९]

किसी गृहस्थ के घर आहार में से प्राग्भ में देव आदि का अग्रपिंड अलग निकाल दिया जाता है । उस अग्रपिंड को निकालते या देवमंदिर आदि में चारों तरफ रखा जाता देख कर, उमको पहिले खाया या लिया हो तो श्रमण ब्राह्मण उस तरफ जल्दी जल्दी जाते हैं । उनको देखकर भिक्षु भी जल्दी जल्दी वहाँ जावे तो तो उसको दोष लगता है । [२५]

यदि कोई गृहस्थ (अपने घर श्रमण ब्राह्मण आदि को भिक्षा के लिये खड़ा देख कर) आहार मुनि को दे और कहे कि, ' यह आहार मैंने तुम सबको जो यहाँ खड़े हो, दिया है । तुम सब मिल कर इसे आपस में बांट लो । इस पर वह मुनि यदि मन में सोचे कि, ' यह सब आहार तो मुझ अकेले के लिये ही

है तो उसको दोष लगता है। इस लिये ऐसा न करके, उस आहार को दूसरे श्रमणब्राह्मणों के पास ले जाकर वह कहे कि, 'यह आहार सबके लिये दिया गया है, इस लिये सब मिलकर बांट लो।' तब उनमें से कोई ऐसा कहे कि, 'हे आयुष्मान् ! तू ही सबको बांट दे।' इस पर वह आहार बांटते समय अपने हिस्से में अच्छा या अधिक आहार न रखे, पर लोलुपता को त्याग कर शांति से सब को बांट दे। परन्तु बांटते समय कोई ऐसा कहे कि, 'हे आयुष्मान् ! तू मत बांट, हम सब मिलकर खावेंगे।' तब वह उसके साथ आहार खाने समय अधिक या अच्छा न खाकर शांति से समान आहार खावे। [२६]

मुनि आहार लाने के बाद, यदि उसमें से अच्छा अच्छा खाकर बाकी का डाल दे तो उसको दोष लगता है। इस लिये ऐसा न करके अच्छा-बुरा सब खा जावे, बुरा छोड़े नहीं। ऐसा ही पानी के सम्बन्ध में समझे। मुनि आवश्यकतासे अधिक भोजन यदि ले आवे और पास में दूसरे समानवर्मी मुनि रहते हो तो उनको वह अधिक आहार बताये बिना या उनकी आवश्यकता के बिना डे डाले तो उसको दोष लगता है वे भी उस देनेवाले को कहें कि, 'हे आयुष्यान् ! जितना आहार हमें लगेगा उतना लेंगे, सारा लगेगा तो सारा लेंगे।' [२७-२८]

यदि आहार दूसरो को देने के लिये बाहर निकाल रखा हो तो उसकी आज्ञा के बिना न ले। पर यदि उसने आज्ञा दे दी हो तो ले ले। [२९]

सब मुनियों के लिये इकट्ठा आहार ले आने के बाद वह मुनि उन सबसे पूछे बिना, अपनी इच्छा के अनुसार ही अपने परिचितों

को जल्दी न दे दे, परन्तु उस आहार को सब के पास ले जा कर कहे कि, 'मेरे पूर्व परिचित (दीना देने वाले) और पश्चात् परिचित (ज्ञान आदि सिग्वाने वाले) आचार्य आदि को क्या मैं यह आहार दे दूँ ?' इस पर वे मुनि उसको कहे कि 'हे आयुष्मान् ! तू जितना चाहिये उतना उनको दे।' [५६]

कोई मुनि अच्छा अच्छा भोजन माग ला कर मन में चाँचे कि यदि इसे खोल कर बताउंगा तो आचार्य ले लेंगे और यदि वह उम भोजन को बुरे भोजन से ढंक कर आचार्य आदि को बतावे तो उसे दोष लगता है। इस लिये, ऐसा न करके, बिना कुछ छिपाये उसको खुला ही बतावे। यदि कोई मुनि अच्छा अच्छा आहार न्वा कर वाकी का आचार्य आदि को बतावे तो भी दोष लगता है; इन लिये ऐसा न करे। [५७]

कोई मुनि अच्छा भोजन लेकर मुनि के पास आकर कहे कि, 'तुम्हारा अमुक मुनि बीमार है तो उम्को यह भोजन खिलाओ, यदि वह न खावे तो तुम खा जाना।' अब वह मुनि उस अच्छे भोजन को खा जाने के विचार से उस बीमार मुनि से यदि कहे कि, यह भोजन रूखा, है, चरपरा है, कडवा है या कपैला हैं; तो उसे दोष लगता है। यदि उन मुनियो ने आहार देते समय यह कहा हो कि, 'यदि वह बीमार मुनि इसको न खावे तो इसके फिर हमारे पास लाना;' तो खुद ही उसे खाकर मूठ बोलने के बदले जैसा कहा हो वैसाही करे। [६०-६१]

भिजा मांगने जाते समय मार्ग, सराय, बंगले, गृहस्थ के घर या भिक्षुओं के मठों से भोजन की सुगंध आने पर मुनि उसको, 'क्या ही अच्छी सुगंध,' ऐसा कह कर न लेंगे। [४४]

कैसा पानी ले-कैसा न ले ?

भिच्छु, आटा (वर्तन, हाथ आदि) धोया हुआ, तिन्ही धोया हुआ चावल धोया हुआ या ऐसा ही पानी, ताजा धोया हुआ, जिसका स्वाद न फिरा हो, परिणाम में अन्तर न पडा हो, निर्जीव न हुआ हो तो सद्योप जानकर न ले परन्तु जिसको धोए बहुत देर होने से उसका स्वाद बदलने से विलकुल निर्जीव हो गया हो तो उस पानी को निर्जीव समझकर ले ।

भिच्छु तिन्ही, चावल और जौ का (धोया हुआ) पानी, मांड (ओसामन), छाछ का नितार, गरम या ऐसा ही निर्जीव पानी देख कर उसके मालिक से मांगे, यदि वह खुद लेने का कहे तो खुद ही ले ले अथवा वही देता हो तो ले ले । निर्जीव पानी जीवजन्तु वाली जमीन पर रक्खा हो, अथवा गृहस्थ उसको सजीव पानी या मिट्टी के वर्तन से देने लगे या थोडा ठंडा पानी मिला कर देने लगे तो वह उसको सद्योप समझ कर न ले । [४१-४२]

आम, केरी, विजोरा, दाख, अनार, खजूर, नारियल, केला, बैर आंवला, इमली आदि का पना बीज आदि से युक्त हो अथवा उसको गृहस्थ छान-छून कर दे तो भिच्छु सद्योप समझ कर न ले । [४३]

सात पिंडैषणाएँ और पानैषणाएँ

(आहार-पानी की मर्यादा विधि)

१ बिना भरे हुए (खाली, सूखे) हाथ और पात्र से दिया हुआ निर्जीव आहार स्वयं मांगकर या दूसरे के देने पर ग्रहण करे ।

२ भरे हुए हाथ और पात्र से दिया हुआ निर्जीव आहार ही ले ।

३. अच्छे हाथ और भरे हुए पात्र से अथवा भरे हुए हाथ और अच्छे पात्र से हाथ में या पात्र में दिया हुआ निर्जीव भोजन खुद ही मांगे या दूसरा दे तो ग्रहण करे।

४. निर्जीव पोहे, ढिंरू, धानी आदि जिसमें से फेंकने का कम और खाने का अधिक निकलता हो और टाता को भी बर्तन धोने आदि का पश्चात् कर्म थोड़ा करना पड़ता हो, उन्हीं को खुद मांगे या दूसरा देता हो तो ले।

५. जिस निर्जीव भोजन को गृहस्थ ने खुद खाने के लिये कटोरी, थाली और कोपक (बर्तन विशेष) में परोसा हो, (और उसके हाथ आदि भी सूख गये हों) उसको खुद मांग कर ले या दूसरा दे तो ले ले।

६. गृहस्थ ने अपने या दूसरो के लिये निर्जीव भोजन कड़खी से निकाला हो, उसको हाथ या पात्र में मांगकर ले या दूसरे दे तो ले ले।

७. जो भोजन फेंकने के योग्य हो और जिसको कोई दूसरा मनुष्य या जानवर लेना न चाहे, उस निर्जीव भोजन को खुद मांग कर ले या दूसरा दे तो ले ले।

इन सातों पिडैपणाओं को भिक्षु को जानना चाहिये और इन में किसी को स्वीकार करना चाहिये।

सात पानैपणाएँ भी इसी प्रकार की हैं, केवल चौथी इस प्रकार है—तिह्नी, चावल, जौ का पानी, मांड, छालू का नितार या गरम या अन्य प्रकार का निर्जीव पानी, जिसको लेने पर (धोने-साफ करने का) पश्चात्कर्म थोड़ा करना पड़े, उसको ही ले।

इन सात पिडैपणा या पानैपणा में से किसी एक की प्रतिज्ञा लेने पर ऐसा न कहे कि मैं ने ही अच्छी प्रतिज्ञा ली है और दूसरो ने बुरी । परन्तु ऐसा समझे कि दूसरोने जो प्रतिज्ञा ली है और मैं ने जो ली है, वे सब जिन की आज्ञा के अनुसार ही हैं और सब यथाशक्ति ही आचार पाल रहे है । [६३]



दूसरा अध्ययन

—(०)—

शय्या*

८२६

कैसे स्थान में रहे-कैसे में न रहे ?

भिडु को ठहरने की जरूरत हो तो वह गांव, नगर या राजधानी में जावे । [६४]

वहाँ वह स्थान अंडे, जीवजन्तु और जाला आदिसे भरा हुआ हो तो उसमें न ठहरे, परन्तु यदि ऐसा न हो तो उसको अच्छी तरह देखभालकर, झाड़-बुहार कर सावधानी से आसन, शय्या करके ठहरे ।

जिस मकान को गृहस्थ ने एक या अनेक सहधर्मी भिडु या भिडुणी के लिये अथवा श्रमणब्राह्मण के लिये छुकाय जीवो की हिंसा करके तैयार किया हो, खरीदा हो, मांग लिया हो, छीन लिया हो (दूसरो का उसमें हिस्सा होने से) बिना आज्ञा के ले लिया हो या मुनि के पास जाकर कहा हो तो उसको सटोप जानकर भिडु उसमें न रहे ।

और, जो मकान किसी खास श्रमण ब्राह्मण के लिये नहीं पर चाहे जिसके लिये ऊपर लिखे अनुसार तैयार किया गया हो पर यदि पहिले दूमेरे उसमें न रहें हो तो उसमें न रहे । परन्तु यदि

* शय्या (मूलमें, 'सेजा') का अर्थ विछौना और मकान दोनो लिया गया है ।

उस मकान में दूसरे रह चुके हो तो उसको देख भाल कर, झाड़-बुहार कर उसमें रहे ।

जिस मकान को गृहस्थ ने भिन्दु के लिये, चटाइयो या बास की पिँचियो से ढकवाया हो, लिपाया हो, धुलाया हो, घिसा कर साफ कराया हो, ठीक कराया हो धूप आदि से वासित कराया हो और यदि उसमें पहिले दूसरे न रहे हो तो वह उसमें न रहे पर यदि दूसरे उसमें रह चुके हो तो वह देख भाल कर, झाड़ बुहार कर उसमें रहे । [६४]

जिम मकान में गृहस्थ भिन्दु के लिये छोटे दरवाजो बड़े या बड़े दरवाजो को छोटे कराये हो उसके भीतर या बाहर पानी से पैदा हुए कंदमूल, फल फूल, वनस्पति को एक स्थान से दूसरे पर ले गया हो या त्रिलकुल नष्ट कर दिया हो, और उसके पाट, नसैनी आदि इधर-उधर ले गया हो या निकाल लिया हो, तो भिन्दु उसमें जबतक कि दूसरे न रह चुके हो न रहे । [६५]

भिन्दु मकान के ऊपरी और ऊँचे भाग में बिना कोड़े खास कारण के न रहे । यदि रहना पड़े तो वहाँ हाथमुँह आदि न धोवे और वहाँ से मलमूत्र आदि शौच क्रिया भी न करे क्योंकि ऐमा करने में गिर कर हाथपैर से लगना और जीवजन्तु की हिंसा होना संभव है । [६६]

भिन्दु स्त्री, बालक, पशु और उनके आहार-पानी की प्रवृत्ति वाले गृहस्थ के घर में न रहे । इसका कारण यह कि उसमें ये महादोष होना संभव हैं; जैसे, वहाँ भिन्दु को (अयोग्य आहारपानी से) सूजन, दस्त, उल्टी आदि रोग हो जायें तो फिर गृहस्थ उस पर दया करके संभव है उसके शरीर को तेल, घी मक्खन या चरबी

आदि से मले या सुगन्धी वस्तु, काथा, क्रोध, वर्णक, चूर्ण या पद्मक आदि का क्षेप करे या ठंडे अथवा गरम पानी से स्नान करावे या लकड़ी से लकड़ी रगड़ कर आग सुलगा कर ताप दे । [६७]

और वहाँ गृहस्थ, उसकी स्त्री, पुत्र, पुत्रवधु, नौकर चाकर और दामदासी आपस में बोलचाल कर मारामारी करें तो उसका मन भी डगमग होने लगे । [७०]

और, गृहस्थ अपने लिये आग सुलगावे तो उसको देख कर उसका मन भी डगमग होने लगे । [७०]

और, गृहस्थ के घर उसके मणि, मोती और सोना चाँदी के अज्ञकारो से विभूषित उनही तरह कन्या को देखकर उसका मन डगमग होने लगे । [६६]

और, गृहस्थ की स्त्रियाँ, पुत्रियाँ, पुत्रवधुएँ, दाइयाँ, दासियाँ या नौकरनियाँ ऐसा सुन रखा होने से कि 'ब्रह्मचारी श्रमण के साथ सम्भोग करने से बलवान, दीप्तिमान, रूपवान, यशस्वी, शूवीर और दर्शनीय पुत्र होता है,' उसको लुभाने और टगमगाने का प्रयत्न करें ।

और, गृहस्थ स्नान आदि से स्वच्छ रहने वाले होते हैं और भिक्षु तो स्नान न करने वाला (कभी संभव है) गृत्र से शौच आदि क्रिया करने से दुर्गंधी युक्त हो जानेसे अप्रिय हो जावे, अथवा गृहस्थ को भिक्षु के ही कारण अपना कार्य बदलना या छोड़ना पड़े । [७२]

और, गृहस्थ ने अपने लिये भोजन तैयार कर लिया हो और फिर भिक्षु के लिये वह अनेक प्रकार का खानपान तैयार करने लगे तो उसके लिये भिक्षु को इच्छा हो । [७३]

और, गृहस्थ ने अपनी जरूरत के लिये लकड़ी फाडा रखी हो और भिन्दु के लिये अधिक लकड़ी फाड़ा कर या खरीद कर या मांग कर आग सुलगावे तो उसको देखकर भिन्दु को तापने की भी इच्छा हो । [७४]

और, गृहस्थ के घर रहने पर भिन्दु रात को मलमूत्र त्यागने के लिये गृहस्थ के घर का दरवाजा खोले, और उस समय कोई बैठा हुआ चोर भीतर घुस जाय उस समय लाधु यह तो नहीं कह सकता कि, यह चोर घुसा, यह चोर छिपा, यह चोर आया, यह चोर गया, इसने चोरी की, दूसरों ने चोरी की, इसकी चोरी की, दूसरे की चोरी की, यह चोर है, यह उसका साथी है, इसने मारा या इसने ऐसा किया । इस पर वह गृहस्थ उस तपस्वी भिन्दु पर ही चोरी की गंका करे । इसलिये, पहिले से ही ऐसे मकान में न रहे भिन्दु को यही उपदेश है । [७५]

जो मकान वास या भूसे की ढेरी के पास हो और इस कारण अनेक जीवजन्तु वाला हो तो उसमें भिन्दु न रहे पर यदि बिना जीवजन्तु का हो तो उसमें रहे । [७६]

मुनि, सराय मे, वगीचो मे बने हुए विश्राम घरों में, और मटो आदि में जहाँ बारबार साधु आते-जाते हो, न रहे । [७७]

जिन मकानों मे जाने-आने या स्वाध्याय की कठिनता हो और जहां चित्त स्थिर न रह सकता हो तो भिन्दु वहा न रहे । जैसे, जो मकान गृहस्थ, आग और पानी वाला हो; जहां जाने का रास्ता गृहस्थ के घर के बीच में से होकर हो, जहां घर के लोग आपस मे लड़ते-भगड़ते हो, या आपस मे शरीर को तेल से मलते हो, या सुगंधित पदार्थ लगाते हो, आपस में स्नान करते-कराते हो, नश

बैठते हो, नग्नवस्था में संभोग सम्बन्धी बातें करते हो, दूसरी गुप्त बातें करते हों अथवा जिस घर में कामोद्दीपक चित्र हों—ऐसे मकान में मुनि न रहे । [६१-६८]

स्थान कैसे मांगें ?

मुनि को सराय आदि में जाकर अच्छी तरह तलाश करने के बाद स्थान को मांगना चाहिये । उसका जो गृहस्वामी या अधिष्ठाता हो, उससे इस प्रकार अनुमति लेना चाहिये, 'हे आयुष्मान्! तेरी इच्छा हो तो तेरी अनुमति और आज्ञा से हम यहाँ कुछ समय रहेंगे।' अथवा (अधिक समय रहना हो तो) जब तक रहना होगा या यह मकान जबतक तेरे अधीन होगा तबतक रहेंगे और उसके बाद चले जावेंगे, तथा (कितने रहेंगे, ऐसा पूछने पर ठीक संख्या न बता कर) जितने आवेंगे, उतने रहेंगे । [८६]

भिन्नु जिसके मकान में रहे, उसका नाम पहिले ही जान ले, जिससे वह निमन्त्रण दे या न दे तो भी उसका आहार-पानी (भिक्षा) न ले सके । [९०]

कुछ दोष

कोई भिन्नु सराय (सराय से उस स्थान का तात्पर्य है जहा वाहर के यात्री आकर ठहरा करते हैं, पहिले वे शहर में न होकर बाहर अलग ही होती थीं) आदि में (अन्य ऋतु से एक मास और वर्षाऋतु में चार मास) एक बार रह चुकने के बाद वहा रहने को फिर आता है तो यह कालातिक्रम दोष कहलाता है । [७६]

कितने ही श्रद्धालु गृहस्थ अपने लिये पड़साल, कमरे, प्याऊ का स्थान, कारखाने या अन्य स्थान बनाते समय उसे श्रमण ब्राह्मण

आदि के रहने के काम आ सकने के लिये बड़ा बना देते हैं। ऐसे मकानों में श्रमण ब्राह्मण आते जाते रहते ही और उनके बाद भिक्षु ऐसा देखकर वहाँ रहे तो यह अभिक्रान्त क्रिया दोष है और यदि पहिले ही वह वहाँ जाकर रहे तो यह अनभिक्रान्त क्रिया दोष है।

ऐसा सुना होने से कि भिक्षु अपने लिये बनाये हुए मकानों में नहीं ठहरते, कोई श्रद्धालु गृहस्थ ऐसा सोचे कि अपने लिये बनाया हुआ मकान भिक्षुओं के लिये कर दूँ और अपने लिये दूसरा बनाऊँगा। यह मालूम होने पर यदि कोई भिक्षु ऐसे मकान में ठहरता है तो यह वर्ज्य क्रिया दोष है। [८२]

इसी प्रकार कितने ही श्रद्धालु गृहस्थोंने किसी खास मंत्रया के श्रमणब्राह्मण, अतिथि, कृपण आदि के लिये मकान तैयार कराया हो तो भिक्षु का उसमें ठहरना महावर्ज्यदोष है। [८३]

इसी प्रकार श्रमणवर्ग के ही अनेक भिक्षुओं के लिये तैयार कराये हुए मकानों में ठहरना सावद्यक्रिया दोष है।

किसी गृहस्थ ने सहधर्मी एव श्रमण के लिये छ. काय के जीवों की हिंसा करके ढाक लीप कर मकान तैयार कराया हो, उसमें ठंडा पानी भर रखा हो, और आग जला कर रखी हो तो ऐसे अपने लिये तैयार कराये हुए मकान में ठहरना महासावद्यक्रिया दोष है। ऐसा करने वाला न तो गृहस्थ है और न भिक्षु ही। [८५]

परन्तु जो मकान गृहस्थ ने अपने ही लिये छाबलीप कर कर तैयार कराया हो, उसमें जाकर रहना अल्पसावद्यक्रिया दोष है। [८६]

कितने ही सरल, मोक्षपरायण तथा निष्कपट भिक्षु कहते हैं कि 'भिक्षु को निर्दोष पर अनुकूल स्थान मिलना सुलभ नहीं है। और कुछ

नहीं तो किसी भी मकान में उसका ढांकना, लीपना, ढरवाजे-खिटकी और इसी प्रकार भिन्नान्न (भिन्न के योग्य) शुद्ध नहीं ही होते । और भिन्न समय-समय पर चंक्रमन (जाना-आना) करता है, स्थिर बैठता है, स्वान्याय करता है, सोता है और भिन्न मांगता है । इन सब कामों के लिये उसको अनुकूल स्थान मिलना कठिन है । ऐसा सुनकर कोई गृहस्थ भिन्न के अनुकूल स्थान तैयार कर रखते हैं; उसमें कुछ समय खुद रहकर या दूसरेको उसका कुछ भाग बेचकर अपनी बुद्धि के अनुसार उसको भिन्न के योग्य बना रखते हैं । इस पर प्रश्न उठता है कि भिन्न का अपने ठहरने के योग्य या अयोग्य स्थान का वर्णन गृहस्थ के सामने करना उचित है या नहीं ? हां, उचित है । (ऐसा करने समय उसके मन में अन्य कोई इच्छा नहीं होना चाहिये ।

बिछाने की वस्तुएँ कैसे मांगे ?

भिन्न को, यदि बिछाने की वस्तुओं (पाट, पाटिया आदि) की जरूरत पड़े तो वह बारीक जीवजन्तु आदि से युक्त हो तो न ले परन्तु जो इनसे सर्वथा रहित हो, उसी को ले । उस को भी यदि ढाता वापिस लेना न चाहता हो तो न ले पर यदि उसे वापिस लेना स्वीकार हो तो ले ले । और, यदि वह बहुत शिथिल और टूटा हो तो न ले पर दृढ़ और मजबूत हो तो ले ले । [६६]

इन सब टोपों को त्याग कर भिन्न को बिछाने की वस्तुओं को मांगने के इन चार नियमों को जानना चाहिये और इनमें से एक को स्वीकार करना चाहिये ।

१. भिन्न घास, दूब या पराल आदि में से एक को, नाम बताकर गृहस्थ से मांगे । घास, तिनका, दूब, पराल बांस की

पिंचियाँ, पीपल आदि के पाट में से एक का निश्चय करके विछाने के लिये खुद मांगे या दूसरा दे तो ले ।

२ ऊपर बताये हुए में से एक का निश्चय करके, उसे गृहस्थ के घर देखकर विछाने के लिये मांगे या दूसरा दे तो ले ।

३. जिमके मकान में ठहरे, उसके यहां उपर की कोई विछाने की वस्तु हो तो मांग ले या वह दे तो ले; नहीं तो उकड़ू या पालकी आदि मार कर बैठा रहे, सारी रात बितावे ।

४ जिमके मकान में ठहरे, उसके यहां (मकान में) पत्थर या लकड़ी की पट्टी तैयार पड़ी मिल जाय तो उसके पर सो जावे; नहीं तो उकटू या पालकी आदि मार कर बैठा रहे, सारी रात बितावे । [१००-१०२]

इन चारों में से कोई एक नियम छेनेवाला ऐसा कभी न कहे कि, 'मैंने ही सच्चा नियम लिया है और दूसरो ने झूठा ।' परन्तु ऐसा समझे कि दूसरे जिस नियम पर चलते हैं और मैं जिस नियम पर चलता हूँ, वह जिन की आज्ञा के अनुसार ही है, और प्रत्येक यथाशक्ति आचार को पाल रहा है । [१०३]

किस प्रकार विछावे और सवे ?

स्थान मिलने पर भिन्न उमको देख-भाल कर, झाड़-बुहार कर वहां सावधानी से आसन, विछौना या बेटक करे । [६४]

विछौने के लिये स्थान देखते समय आचार्य, उपाध्याय आदि तथा बालक, रोगी या अतिथि आदि के लिये स्थान छोड़कर, शेष स्थान में—बीच में या अन्त में, सम या विषम में, हवादार या बन्द त्दा में, सावधानी से विछौना करे । [१०७]

सोने के पहिले, भिक्षु मलमूत्र त्यागने के स्थान को जान ले । नहीं तो रात में मलमूत्र करने जाते समय वह गिर पड़े, हाथ-पैर में लग जाय या जीवों की हिंसा हो । [१०६]

सोते समय भिक्षु सिंग से पैर तक शरीर को पाँछ ले । [१०८]

उस स्थान पर बहुत से मनुष्य सो रहे हो तो इस प्रकार वह सोवे कि उसके हाथ-पैर आदि दूयर्गों को न लगे, तथा सोने के बाद (जोर से) ग्रांस लेते समय, छींकते समय, बगामी लेते समय, उठारते समय या वायु उड़ते समय मुँहा या गुदा हाथ से ढोक कर सावधानी से उन क्रियाओं को करे । [१०९]

वहा पर बहुत से मनुष्य सो रहे हो और घर छोटा हो, ऊँचे नीचे दरवाजे वाला तथा भीड़ वाला हो तो उस मकान में रात में आते-जाते समय हाथ आगे करके फिर पैर रख कर सावधानी से आवे-जावे क्योंकि रास्ते में श्रमणों के पात्र, दंड, कर्मडल, वस्त्र आदि उधर-उधर बिखरे पड़े हो और इस कारण असावधानी से आते-जाते समय भिक्षु वहाँ गिर पड़े, हाथ-पैर में लग जाय या जीवों की हिंसा हो । [११०]

बिछाने की वस्तुओं को कैसे लौटावे ?

बिछाने की वस्तुओं को भिक्षु जब गृहस्थ को वापिस दे तो ऐसी की ऐसी ही न दे दे पर उसके जीवजन्तु साफ करके सावधानी से दे । [१०५]

समता

भिक्षुको सोने के लिये कभी सम जगह तो कभी विषम, कभी हवादार तो कभी बन्द हवा, कभी डांस मच्छर वाली तो कभी बिना

डास मच्छर की; कभी कचरेवाली तो कभी साफ; कभी पड़ी-सड़ी तो कभी अच्छी, कभी भयावह तो कभी निर्भय जगह मिले तो भिन्न समता से उसे स्वीकार करे पर खिन्न या प्रसन्न न हो। मुनि के आचार की यही सम्पूर्णता है कि सब विषयो में रागद्वेष से रहित और अपने कल्याण में वह तत्पर रहकर आवधानी से प्रवृत्ति करे। [११०]



तीसरा अध्ययन

—(०)—

विहार

६६६

चातुर्मास

भिच्छु या भिच्छुणी ऐसा जानकर कि अब वर्षा ऋतु लग गई है, पानी बरसने से जीवजन्तु पैदा हो रहे हैं, अंकुर फूट निकले हैं और रास्ते जीवजन्तु, वनस्पति आदि से भर गये हैं, इस कारण ठीक मार्ग नहीं दिखाई पड़ता तो वह गांव गांव फिरना बन्द करके संयम से एक स्थान पर चातुर्मास (वर्षावास) करके रहे। [१११]

जिस गांव या शहर में बड़ी स्वाध्याय भूमि (वाचन-मनन के लिये एकान्त स्थान) न हो, मल-मूत्र के लिये जाने को योग्य स्थान न हो, सोने के लिये पाट, पीठ टेकने का पटिया, बिछौना, स्थान और निर्दोष आहार-पानी का सुभीता न हो और जहाँ अनेक श्रमण ब्राह्मण, भिखारी आदि आने से या आने वाले होने से बहुत भीड़ भाड़ होने के कारण जाना आना, स्वाध्याय, ध्यान आदि में कठिनाई पड़नी हो तो उसमें भिच्छु चातुर्मास न करे परन्तु जहाँ ऐसा न हो वहाँ सावधानी से चातुर्मास करे। [११२]

वर्षाऋतु के चार मास पूरे होने पर और हेमन्तऋतु के भी पांच दस दिन बीत जाने पर भी, यदि रास्ते अधिक घास और जीवजन्तु वाले हो, लोगो का आना जाना शुरू न हुआ हो तो भिच्छु गांव-गाव विहार न करे। पर रास्ते पर जीवजन्तु, घास कम हो गये

हो और लोगो का आना जाना भी शुरू हो गया हो तो वह सावधानी से विहार करना शुरू करदे । [११३]

किस प्रकार विहार करे ?

भिच्छु चलते समय अपने सामने चार हाथ जमीन पर दृष्टि रखे । रास्ते में जीवजन्तु देख कर, उनको बचाते हुए पैर रखे । जीवजन्तु से रहित रास्ता यदि लग्वा हो तो उसी से जावे, जीवजन्तु वाले छोटे रास्ते से नहीं । [११४]

भिच्छु दूसरे गांव जाते समय मार्ग में गृहस्थ आदि से जोर से बातें करता हुआ न चले । रास्ते में राहगिर मिले और पूछे कि 'यह गांव या शहर कैसा है, वहाँ कितने घोड़े, हाथी, भिखारी या मनुष्य हैं; वहाँ आहार-पानी, मनुष्य, धान्य आदि कम या अधिक हैं;' तो भिच्छु उसको कोई जवाब न दे । इसी प्रकार वह भी उससे ऐसा कुछ न पूछे । [१२३, १२६]

जाते समय साथ में आचार्य, उपाध्याय या अपने से अधिक गुण सम्पन्न साधु हो तो इस प्रकार चले कि उनके हाथपैर से अपने हाथपैर न टकरावें, और रास्ते में राहगिर मिलें और पूछें कि, 'तुम कौन हो ? कहां जाते हो'—तो उसका जवाब खुद न देते हुए आचार्य आदि को देने दे और वे जवाब दे रहे हो तब बीच में न बोले । [१२८]

रास्ते में कोई राहगिर मिले और पूछे कि, 'क्या तुमने रास्ते में अमुक मनुष्य, प्राणी या पत्नी देखा है, अमुक कंद, मूल या वनस्पति; या अग्नि, पानी या धान्य देखा है ? जो देखा हो, कहो,'—तो उसे कुछ न कहे या बतावे । उसके प्रश्न की उपेक्षा ही कर दे ।

श्रीर जानते हुगु भी, 'भैं जानता हूँ,' ऐमा तरु न कहे । ठर्मा प्रकर किसी पड़ाव टाले हुगु लरुकर के गगुगुध से कोठे पड़े, या श्रागे कौनसा गांव श्रावेगा, यह पड़े, या श्रमुक गांव जाने का रागुता कितना लगुगा है, यह पड़े तो इन सब प्रश्नों के गगुगुध में ऐमा ही करे । [१२६]

कीचड़, धूल से भरे हुगु पैरों को साफु करने के विचार से चलते समय पैरो को इधर-उधर करके वासु तोडते हुगु, उवाते हुगु, न चले ! पहिले ही मालुम करके थोटी हरी वाले मार्ग पर ही सावधानी से चले । [१२५]

मार्ग में किल्ला, खाडे, कोट दरुवाजा श्रादि उतरने के स्थान पडने हो, श्रीर दूसरा रागुता हो तो इन छोटे रागुतों से भी न जावे । दूसरा रागुता न होने के कारण उमीसे जाना पड़े तो भाडु, गुच्छु, गुल्म, लता, बेल, वासु, भंक्राडु श्रादिको पक्रुड कर जावे या कोडे राहगिर जा रहा हो तो उसकी सहायता मांग ले । इगु प्रकार सावधानी से उतर कर श्रागे चले । [१२५]

मार्ग में धान्य, गाडियों, रथ श्रीर देश या विदेश की सेना का पड़ाव . देखकर दूसरा रागुता हो तो इस छोटे रागुते से भी न जावे । दूसरा रागुता न होने से उसी से जाना पड़े श्रीर सेना का कोडे श्रादमी श्राकर कहे कि, 'यह तो जासुगु है, इगुको पक्रुड कर ले चलो,' तो वह भिजु उस समय वुवाकुल हुगु बिना, मन में श्राकोश लाये बिना अपने को एकाग्र रखकर समाहित करे । [१२५]

जिस मार्ग में सीमान्त के अनेक प्रकार के चोर, ग्लेच्छु श्रीर अनार्य श्रादि के स्थान पडते हो या जहां के मनुष्यो को धर्म का भान कराना कठिन श्रीर अशक्य हो श्रीर जो मनुष्य अकाल में

खाना-पीना, सोना आदि व्यवहार करते हो तो उस मार्ग पर अच्छे स्थान और प्रदेश होने पर भी न जावे। इसी प्रकार जिले मार्ग पर राजा बिना के, गणसत्तात्मक, छोटी अवस्था के राजा के, दो राजा के, किसी प्रकार के राज्य बिना के, आपस में विरोधी स्थान पडते हो तो वह न जावे। इसका कारण यह कि संभव है वहां के मूर्ख लोग उसको चोर, जासूस या विरोधी पक्ष का समझ कर मारें, डरावें या उसके वस्त्र आदि छीनकर उनको फाड़-तोड़ डालें। [११५-११६]

विहार करते हुए रास्ता इतना ऊबड़-खावड़ आजाय कि जो एक, दो, तीन, चार या पांच दिन में भी पार न हो सके तो उधर अच्छे स्थान होने पर भी न जावे क्योंकि बीच में पानी बरसने से जीवजन्तु, हरी आदि पैदा होने के कारण रास्ते की जमीन सजीब हो जाती है।

मार्ग चलते समय किला, खाई, कोट, गुफा, पर्वत पर के घर (कूटागार), तलघर, वृक्षगृह, पर्वतगृह, पूजितवृक्ष, स्तूप, सराय, या उद्यानगृह, आदि मकानों और भवनो को हाथ उठाकर या श्रंगुली बत्ताकर देखे नहीं, पर सावधानी से सीधे मार्ग पर चले। इसी प्रकार जलाशय आदि के लिये समझे। इसका कारण यह कि ऐसा करने से वहां जो पशुपक्षी हो, वे, यह समझकर कि यह हमको मारेगा, डरकर व्यर्थ इधर-उधर दौडते हैं।

मार्ग में सिंह आदि हिसक पशु को देखकर, उनसे डरकर मार्ग को न छोड़े; वन, गहन आदि दुर्गम स्थानों में न घुसे, पेड़ पर न चढ़ जावे, गहरे पानी में न कुद पडे, किसी प्रकार के हथियार आदि के शरण की इच्छा न करे। किन्तु जरा भी घबराये बिना,

शांति से संयम पूर्वक चलता रहे। यदि मार्ग में लुटेरों का झुंड मिल जाय तो भी ऐसा ही करे। लुटेरे पास आकर कपडे आदि मांगे या निकाल देने को कहें तो वैसा न करे। इस पर वे खुद छीन लें तो फिर उनको नमस्कार, प्रार्थना करके न मांगे, पर उपदेश देकर मांगे या मौन रहकर उस की उपेक्षा करदे। और, यदि चोरोने उसे मारापीटा हो तो उसे गांव या राजदरवार में न कहता फिरे, किसी को जाकर ऐसा न कहे, कि, 'हे आयुष्मान् ! इन चोरोने मेरा ऐसा किया, वैसा किया।' ऐसा कोई विचार तक मन में न करे। परन्तु व्याकुल हुए बिना शान्त रहकर सावधानी से चलता रहे। [१३१]

पानी को कैसे पार करे ?

एक गांव से दूसरे गांव जाते समय मार्ग में कमर तक पानी हो तो पहिले सिर से पैर तक शरीर को जीवजन्तु देखकर साफ करे, फिर एक पैर पानी में, एक पैर जमीन पर (एक पानी में तो दूसरा ऊपर ऊंचा रखकर दोनों को एक साथ पानी में नहीं रखकर) रखकर सावधानी से अपने हाथ पैर एक दूसरे से न टकरावे, इस प्रकार चले।

पानी में चलते समय शरीरको ठंडक देने या गरमी मिटाने के विचार से गहरे पानी में जाकर गोता न लगावे पर समान पानी में ही होकर चलता रहे। उस पार पहुँचने पर शरीर गीला ही तो किनारे ही खड़ा रहे गीले शरीर को सुखाने के लिये उसे न पोछे, न रगड़े, न तपावे पर जब अपने आप पानी सूख जावे तो शरीर को पोछकर आगे वढे। [१२४]

नाव में कैसे जावे ?

५)

मार्ग में इतना पानी हो कि नाव द्वारा ही पार जाना हो सकता हो तो भिच्चु अपने लिये खरीदी हुई, मांग कर ली हुई, अदल बदल की हुई, जमीन पर से पानी में लाई हुई, पानी में से जमीन पर लाई हुई, भरी हुई, खाली कराई हुई, कीचड़ में से बाहर निकाली हुई नाव में कदापि न बैठे, परन्तु यदि नाव को गृहस्थो ने अपने लिये पार जाने को तैयार कराई हो तो उस नाव को वैसी ही जान कर भिच्चु उन गृहस्थो की अनुमति लेने के बाद एकान्त में चला जावे, और अपने वस्त्र, पात्र आदिको देखभाल कर तथा उनको एक ओर रखकर सिर से पैर तक शरीर को पोछ कर साफ करे, फिर (उस पार पहुंचने तक) आहार-पानी का त्याग (प्रत्याख्यान) करके एक पैर पानी में एक ऊपर रखते हुए सावधानी से नाव पर चढे (११८)

नाव पर चढकर आगे न बैठे, पीछे भी न बैठे और बीच में भी न बैठे । नाव की बाजू पकडकर, अंगुली बलाकर, ऊंचा-नीचा होकर कुछ न करे । यदि नाववाला आकर उससे कहे कि, 'हे अयुष्मान् ! तू इस नाव को इधर खींच या धकेल, इस वस्तु को उस में डाल या रस्सा पकडकर खींच, तो वह उस तरफ ध्यान न दे । यदि वह वहे कि, 'तुम्हें से इतना न हो सकता हो तो नाव में से रस्सा निकाल कर दे दे जिससे हम खींच ले, तो भी वह ऐसा न करे । यदि वह कहे कि, 'तू डांड, बल्ली या वांस लेकर नाव को चला,' तो भी वह कुछ न करे । यदि वह कहे कि, 'तू नाव में भराने वाले पानी को हाथ, पैर, वर्तन या पात्र से उलीच डाल,' तो भी वह कुछ न करे । वह कहे कि नाव के इस छेड़ को तेरे हाथ, पैर आदि से या वस्त्र, मिट्टी, कमलपत्र या कुरुविंद घास से बन्द कर रख,' तो भी

वह कुछ न करे। छेद में से पानी को आते देवकर या नाव को डगमगाते देखकर नाव वाले को जा कर पुग्ना न कहे कि, 'यह पानी भरा रहा है' इसी प्रकार इय वात को मन में धोटना भी न रहे। परन्तु व्याकुल हुए विना तथा चित्त को अग्रान्त न करके, अपने को एकाग्र करके समाहित करे। वह नाववाला आकर उसे कहे कि, 'यह छत्र पकड़, यह शस्त्र पकड़, इस लड़के लड़की को दूध या पानी पिला,' तो वह ऐसा न करे। इस पर चिह्न कर काँड़े पुग्ना बहे कि, यह भिक्षु तो नाव पर बैकाम बोझा ही है इस लिये इयको पकड़ कर पानी में डाल दो।' यह सुनकर वह भिक्षु तुरन्त ही भागी कपड़े अलग करके हलके कपड़े शरीर और मुँह से लपेट ले, और यदि वे क्रूर मनुष्य उसका हाथ पकड़कर पानी में डालने आवें तो वह उनको कहे कि, 'आयुष्यमान गृहस्थ' हाथ पकड़ कर मुझे फेंकने की, जरूरत नहीं मैं तो खुद ही उतर जाता हूँ। इतने परभी वे उसको फेंक दें तो भी वह अपने चित्त को शान्त रखे, उनका सामना न करे परन्तु व्याकुल हुए विना सावधानी से उस पानी को तैरकर पार कर जावे। (१२०-१२१)।

भिक्षु पानी में तैरते समय हाथ-पैर आदि न उछाले, गोते न खावे, क्योंकि, ऐसा करने से पानी नाक-कान से जाकर यों ही नष्ट होता है। भिक्षु पानी में तैरते थक जाय ते वह अपने सब या कुछ कपड़े अलग करदे, उनसे बंधा न रहे। किनारे पर पहुँचने पर शरीर को पूछे, रगडे या तपावे नहीं, पर पानी के अपने आप सूखने पर उसको पोछ कर आगे चले।

भिक्षु और भिक्षुणी के आचार की यही सम्पूर्णता है कि सब विषयो में सदा राग द्वेष रहित होकर अपने कल्याण में तत्पर रह कर सावधानी से प्रवृत्ति करे।

चौथा अध्ययन

—(०)—

भाषा

३३३६

भाषा के निम्न प्रयोग अनाचार रूप है, इनका सत्पुरुषो ने आचरण नहीं किया। भिक्षु भी इन को समझ कर आचरण न करे। वे है- क्रोध, मान, माया, लोभ से बोलना, जान बुझ कर कठोर बोलना, अनजाने कठोर बोलना आदि। विवेकी इन सब दोषमय भाषा के प्रयोगो का त्याग करे।

भिक्षु (जाने बिना या निश्चय हुए बिना) निश्चय रूप से नहीं बोले; जैसे कि यही ठीक है या यह ठीक नहीं है, (अमुक साधु को) आहार पानी मिलेगा ही या नहीं ही मिलेगा; वह उसे खा ही लेगा या नहीं ही खावेगा, अमुक आया है ही या नहीं ही आया है; आता ही है या नहीं ही आता है, आवेगा ही या नहीं ही आवेगा। भिक्षु जरूरत पडने पर विचार करके, विश्वास होने पर ही निश्चय रूप से कहे। [१३२]

एकवचन, द्विवचन, बहुवचन, स्त्रीलिंग, पुहर्लिंग, नपुंमकलिंग, उत्तम पुरुष, मध्यम पुरुष, अन्य पुरुष, मध्यम-ग्रन्थ मिश्रित पुरुष, अन्य-मध्यम मिश्रित पुरुष, भूतकाल, वर्तमानकाल, भविष्यकाल, प्रत्यक्ष और परोक्ष, इन सोलह प्रकार में से किसी का उपयोग करते समय विचारपूर्वक, विश्वास होने पर ही, सावधानी से, संयमपूर्वक उपरोक्त दोष टाल कर ही बोले। [१३२]

भिन्न भाषा के इन चार भेदों को जानें—मय्य, अमय्य, कुञ्ज
मय्य कुञ्ज अमय्य, न मय्य और न अमय्य । [१३०]

इन चारों प्रकार की भाषाओं में से जो कोई मंत्रोप, कर्मबंध
कराने वाली, कर्षण, कडवी, निन्दुर, कठोर, अनर्थकारी, जीवो वा
द्वेष्टन-भेष्टन और उनको आवात परिताप करने वाली हो, उसे जान
कर न बोले । परन्तु जो भाषा मय्य, मूढन (ऊपर से अमय्य जान
पड़ती है, पर वाम्नात्र में मय्य होना है) न मय्य या न अमय्य और
उपरोक्त दोषों से रहित हो, उसी को जानकर बोले । [१३३]

भिन्न क्रिया को बुलाता हो और यदि वह न सुने तो उसको
श्रवज्ञा से चांडाल, कुत्ता, चोर, दुर्गाचारी, भूटा आदि सम्बोधन
न करे, उसके माता पिता के लिये भी ये शब्द न कहे, परन्तु
' हे अमुक, हे आयुष्मान्, हे श्रावक, हे उपामक हे धार्मिक, हे
धर्मप्रिय, ऐसे शब्द से सम्बोधन करे, स्त्री को सम्बोधन करने समय
भी ऐसा ही करे । [१३४]

भिन्न आकाश, गर्जना और विजर्जा को देव न बहे । उसी
प्रकार देव वरसा, देव ने वर्षा बन्द की, आदि भी न कहे । और
वर्षा हो या न हो, सूर्य उदय हो या न हो, राजा जीते या न
जीते, भी न कहे । आकाश के लिये कुछ कहना हो तो नभोदेव या
ऐसा ही कुछ कहने के बड़ले में ' अंतरित्त ' कहे । देव वरसा ऐसा
कहने के बड़ले यह कहे कि बादल इकट्ठे हुए, या बरसे । [१३५]

भिन्न या भिन्नणी हीन रूप देवकर उसको वैया ही न कहे ।
जैसे, सूजे हुए पैर वाले को ' हाथीपग्गा ' न कहे, कोढ़ वाले को
' कोडी, न कहे, आदि । संक्षेप में, जिसके कहने पर सामने वाला
मनुष्य नाराज हो, ऐसी भाषा जान कर न बोले ।

भिन्नु उत्तम रूप देखकर उनको वैसा ही कहे । जैसे, तेजस्वी आदि । संक्षेप में, जिसके कहने पर सामने वाला मनुष्य नाराज न हो, ऐसी भाषा जान कर बोले ।

भिन्नु कोट, किला, घर आदिको देखकर ऐसा न कहे कि यह सुन्दर बनाया है या कल्याणकारी है । परन्तु जरूरत पड़ने पर ऐसा कहे कि, यह हिसापूर्वक बांधा गया है, दोपपूर्वक बांधा गया है, प्रयत्नपूर्वक बांधा गया है । अथवा दर्शनीय को दर्शनीय और वेडोल को वेडोल कहे । [१३६]

इसी प्रकार तैयार किये हुए आहार-पानी के सम्बन्ध में समझे ।
[१३७]

भिन्नु किसी जवान और पुष्ट प्राणी-पशु-पक्षी को देखकर ऐसा न कहे कि, यह हृष्टपुष्ट, चरबी युक्त, गोलमटोल, काटने योग्य या पकाने योग्य है परन्तु जरूरत पड़ने पर ऐसा कहे कि इसका शरीर भरा हुआ है, इसका शरीर मजबूत है, यह मांस से भरा हुआ है अथवा यह पूर्ण अंग वाला है ।

भिन्नु गाय, बैल आदि को देखकर ऐसा न कहे कि यह टोहने योग्य है, फिराने योग्य है, या गाड़ी में जोतने योग्य है पर ऐसा कहे कि यह गाय दूध देने वाली है, जवान है और बैल बडा या छोटा है ।

भिन्नु बाग, पर्वत या वन में बड़े पेड़ आदि देखकर ऐसा न कहे कि, यह महल बनाने के काम के हैं, दरवाजे बनाने के काम के हैं या घर, अर्गला, हल, गाड़ी आदि बनाने के काम के हैं । पर ऐसा कहे कि, योग्य जाति के हैं, ऊंचे हैं, मोटे हैं, अनेक शाखा वाले हैं, वेडोल या दर्शनीय है ।

इसी प्रकार वृक्षों में फल लगे देखकर ऐसा न कहे कि ये फल पके हैं, या पका कर खाने योग्य हैं या अभी खाने योग्य हैं, नरम हैं या टुकड़े करने योग्य हैं। परन्तु उन वृक्षों को देखकर ऐसा कहे कि, फल के भार से यह बहुत झुक गये हैं, उनमें बहुत से फल लगे हैं या फलों का रंग अच्छा है।

भिन्नु खेतों में धान्य खड़ा देखकर ऐसा न कहे कि वह पक गया है, या हरा है या सेरुने योग्य है या धानी फोड़ने के योग्य है। पर ऐसा कहे कि, वह ऊगा हुआ है, बढा हुआ है, सरत हो गया है, रस भरा है, उसमें दाने लग गये हैं या लग रहे हैं। [१३८]

भिन्नु अनेक प्रकार के शब्द सुन कर ऐसा न कहे कि, यह अच्छा या बुरा है परन्तु उसका स्वरूप बताने के लिये सुशब्द को सुशब्द और दुःशब्द को दुःशब्द कहे। ऐसा ही रूप, गन्ध और रस के सम्बन्ध में भी करे। [१३९]

भिन्नु क्रोध, मान, माया और लोभ का त्याग करके विचार-पूर्वक विश्वास काके ही बोले, जैसा सुने, वैसा ही कहे; तथा ध्वराये विना, विवेक से, समभाव पूर्वक, सावधानी से बोले। [१४०]

भिन्नु या भिन्नुणी के आचार की यही सम्पूर्णता है कि वह सब विषयों में सदा रागद्वेषरहित और अपने कल्याण में तत्पर रह कर सावधानी से प्रवृत्ति करे।



पांचवां अध्ययन

—(०)—

वस्त्र

६६६

भिन्नु या भिन्नुणी को वस्त्र की जरूरत पड़ने पर वह ऊन, रेशम सन, ताडपत्र आदि, कपास या रेशे के बने वस्त्र मांगे । जो भिन्नु बलवान, निरोगी और मजबूत हो, वह एक ही वस्त्र पहिने, भिन्नुणी (साध्वी) चार वस्त्र पहिने, एक दो हाथ का, दो तीन हाथ के और एक चार हाथ का । इतनी लम्बाई वाले न मिले तो जोड़कर बना ले । [१४१]

भिन्नु या भिन्नुणी वस्त्र मांगने के लिये दो कोस से दूर जाने की इच्छा न करे । [१४२]

जिस वस्त्र को गृहस्थ ने एक या अनेक सहधर्मी भिन्नु या भिन्नुणी के लिये या खास संरया के श्रमणब्राह्मण आदि के लिये हिंसा करके तैयार किया हो, खरीदा हो (खण्ड २ रे के अ० १ ले के सूत्र ६-८, पृष्ठ ७६ में पिंडैपणा के विशेषण के अनुसार) उस वस्त्र को सटोप जानकर न ले ।

और जिस वस्त्र को खास संरया के श्रमणब्राह्मण के लिये नहीं पर चाहे जिस के लिये ऊपर लिखे अनुसार तैयार कराया हो और उसको पहिले किसी ने अपना समझ कर काम से न लिया हो तो भिन्नु उसको सटोप जानकर न ले; पर यदि उसको दूसरो ने अपना समझ कर पहिले काम में लिया हो उसको निर्दोष समझ कर ले ले । [१४३]

इसी प्रकार जो वस्त्र गृहस्थने भिक्षु के लिये खरीदा हो, धोया हो, रंगा हो, सुगंधी पदार्थ और उकाले में मसलकर साफ़ किया हो, धूप से सुवासित किया हो तो उसको जब तक दूसरो ने अपना समझ कर काम में न लिया हो तब तक वह न ले। परन्तु दूसरो ने अपना समझ कर उसको काम में लिया हो तो वह ले ले। [१४४]

भिक्षु बहुत मूल्य के या दर्शनीय वस्त्र मिले तो भी न ले। [१४५]

उपरोक्त टोप टाल कर, भिक्षु नीचे के चार नियमों में से किसी एक नियम के अनुसार वस्त्र मांगे—

१ ऊनी, सूती आदि में से किसी एक तरह का निश्चित करके उसी को खुद मांगे या कोई दे तो ले ले।

२ अपनी जरूरत का वस्त्र गृहस्थ के यहां देखकर मांगे या दे तो ले ले।

३ गृहस्थ जिस वस्त्र को भीतर या ऊपर पहिनकर काम में ले चुका हो, उसी को मांगे या दे तो ले ले।

४ फैंक देने योग्य, जिसको कोई भिखारी या याचक लेना न चाहे ऐसा ही वस्त्र मांगे या दे तो ले ले।

इन चारों में से एक नियम के अनुसार चलने वाला ऐसा कभी न समझे कि मैंने ही सच्चा नियम लिया है और दूसरे सब ने भूटा (आगे खण्ड २ रे के अ. १ ले के सूत्र ६३, पृष्ठ ८३ के अनुसार)।

इन नियमों के अनुसार वस्त्र मांगते समय भिक्षु को गृहस्थ यदि ऐसा कहे कि, 'तुम महिने के बाद या दस, पांच दिन बाद या कल या परसो आओ, मैं तुमको वस्त्र दूँगा,' तो भिक्षु उसे कहे कि, 'हे आयुमान्! मुझे यह स्वीकार नहीं है। इयं धिये तुम्हें

देना हो तो अभी दे दो ।' इस पर वह कहे कि, 'थोड़ी देर बाद ही तुम आओ;' तो भी वह इसे स्वीकार न करे । यह सुनकर वह गृहस्थ घर में किमी से कहे कि, 'हे भाई या बहिन, अमुक वस्त्र लाओ, उस वस्त्र को हम भिक्षु को दें, और अपने लिये दूसरा लावेंगे ।' तो ऐसा वस्त्र सदोप जानकर भिक्षु न ले ।

अथवा वह गृहस्थ अपने घर के मनुष्य से ऐसा कहे कि, 'अमुक वस्त्र लाओ, हम उसको सुगन्धी पदार्थ या उकाले से घिस कर साफ़ करके या सुगन्धित करके भिक्षु को दें, या ठंडे अथवा गरम पानी से धोकर दें, या उसमें के कंद, शाक भाजी आदि निकाल कर दें; तो भिक्षु तुरन्त ही उसे कह दे कि, 'हे आयुमान्, तुम्हें देना ही हो तो ऐसा किये बिना ही दो ।' इतने पर भी गृहस्थ उसे वैसा करके ही देने लगे तो वह उसे सदोप जानकर न ले ।

गृहस्थ भिक्षु को कोई वस्त्र देने लगे तो भिक्षु उसे कहे कि 'हे आयुमान्, मैं एक बार तुम्हारे वस्त्र को चारों तरफ से देख लूँ,' बिना देखे भाले वस्त्र को लेने में अनेक दोष है । कारण यह कि इस वस्त्र में, सम्भव है, कोई कुंडल, हार आदि आभूषण या बीज, धान्य आदि कोई सचित्त वस्तु बंधी हो । इस लिये पहिले ही से देख कर वस्त्र ले । [१४६]

जो वस्त्र जीवजन्तु से युक्त जान पड़े, भिक्षु उसे न ले । यदि वस्त्र जीवजन्तु से रहित हो पर पूरा न हो, जीर्ण हो, थोड़े समय के लिये दिया हो, पहिनने योग्य न हो और किसी तरह चाहने योग्य न हो तो भी उसको न ले । परन्तु जो वस्त्र जीवजन्तु से रहित, पूरा, मजवूत, हमेशा के लिये दे दिया हुआ, पहिनने योग्य हो, उसे निर्दोष जानकर ले ले ।

भिच्छु, ऐसा समझकर कि वस्त्र नया नहीं है, दुर्गन्ध से भरा हुआ है; उसको सुगन्धी पदार्थ उकाले या ठुंटे या गरम पानी से धोवे या साफ न करे। [१४७]

भिच्छु को वस्त्र को धूप में सुखाने की जरूरत पड़े तो वह उनको गीली या जीवजन्तु वाली जमीन पर न डाले। उम्मी प्रभार उनको जमीन से ऊपर की वस्तुओं पर जो इधर-उधर हिलती हो, पर भी न डाले और कोट, भीत, शिला, टेले, खम्भे, खाट, मंजिल या छत आदि जमीन से ऊपर भी या हिलने वाली जगह पर भी न डाले। परन्तु वस्त्र को एकान्त में ले जाकर वहाँ जली हुई जमीन आदि बिना जीवजन्तु के स्थान पर देख भालकर साफ करके डाले। [१४८]

भिच्छु, ऐसे ही वस्त्र मांगे जिनको वह स्वीकार कर सकता हो और जैसे मिले वैसे ही पहिने। उनको धोवे या रंगे नहीं, और धोये हुये या रंगे हुए वस्त्र न पहिने, दूसरे गांव जाते हुए उनको कोई छीन लगे, इस डर से न छिपावे, और ऐसे ही वस्त्र धारण करे जिनको छीनने का मन किसीका न हो। यह वस्त्र धारी भिच्छु का सम्पूर्ण आचार है।

गृहस्थ के घर जाते समय अपने वस्त्र साथ में लेकर ही जावे-आवे। ऐसा ही शौच या स्वाध्याय करने जाते समय करे। परन्तु वर्षा आदि के समय वस्त्र साथ में लेकर न जावे-आवे। [१४९]

कोई भिच्छु दूसरे गांव जाते समय, कुछ समय के लिये किसी भिच्छु से मांग कर वस्त्र ले आवे और फिर वापिस आने पर उस वस्त्र को उसके मालिक को देने लगे तो वह उसको वापिस न ले या लेकर दूसरे को न दे दे, या किसी का मांग कर न दे

या उसका बदला न करे या दूसरे को जा कर ऐसा न कहे कि, 'हे आयुमान्, क्या तुझे यह वस्त्र चाहिये?' और, यदि वह मजबूत हो तो उसे फाड़ न फेंके परन्तु काम में लिये हुए उस वस्त्र को मांगकर ले जाने वाले को ही दे दे-खुद काम में न ले। भिक्षुओं का ऐसा आचार सुन कर कोई भिक्षु ऐसा विचार करे कि, मैं थोड़े समय के लिये वस्त्र मांग लूँ और फिर दूसरे गाय से लौटने पर उसे वापिस दूँगा तो वह नहीं लेगा तो वह मेरा ही हो जायगा-इन्में उसको दोष लगता है। इसलिये वह ऐसा न करे। [१५८]

भिक्षु वर्णयुक्त वस्त्रको विवरण न करे और विवरण को वर्णयुक्त न करे; दूसरा प्राप्त करने की इच्छा से अपना वस्त्र दूसरो को न दे दे, फिर लौटाने के लिये दूसरे से वस्त्र न ले, उसका बदला न करे, अपना वस्त्र देने की इच्छा से दूसरो से ऐसा न कहे कि, 'तुमको यह वस्त्र चाहिये?' दूसरो को ग्रहण न लगता हो तो मजबूत कपड़े फाड़ न फेंके। मार्ग में कोई लुटेरा मिल जाय तो उससे अपने वस्त्र बचाने के लिये भिक्षु उन्मार्ग पर न चला जाये, अमुक मार्ग पर लुटेरे बसते हैं ऐसा जानकर दूसरे मार्ग न चला जाये, सामने आकर वे मागे तो उन्हें दे न डाले, परन्तु-२ रे खण्ड के ३ रे अन्व. के सूत्र १३१, पृष्ठ ६८ के अनुसार करे। [१५९]

भिक्षु या भिक्षुणी के आचार की यही सम्पूर्णाता है। 'भाषा' अध्ययन के अन्त-पृष्ठ १०४ के अनुगार।



छठा अध्ययन

—(०)—

पात्र

२३२६

भिच्छु या भिच्छुणी को पात्र की जरूरत पड़े तो वह तूंची, लकड़ी, मिट्टी, या इसी प्रकार का कोई पात्र मांगे। यदि कोई भिच्छु बलवान, निरोगी और मजबूत हो तो एक ही पात्र रखे, दो नहीं।

पात्र मांगने के लिये वह दो कोस से दूर जाने की इच्छा न करे।

जिस पात्र को गृहस्थने एक या अनेक सहधर्मी भिच्छु या भिच्छुणी के लिये जीवो की हिसा करके तैयार किया हो. (बख अव्ययन के सूत्र १४३, पृष्ठ १०५ के अनुसार) तो उसे सद्योप समझ कर न ले।

भिच्छु, बहुमूल्य और दर्शनीय पात्र मिलने पर भी न ले।

उपरोक्त दोष टालकर, भिच्छु नीचे के चार नियमों में से एक नियम के अनुसार पात्र मांगे—

१ तूंची, लकड़ी, मिट्टी याट्टि के पात्र में से एक तरह का निश्चय करके, उसी का पात्र मांगे या कोई दे तो ले ले।

२. अपनी जरूरत का पात्र गृहस्थ के यहां देव कर मांगे या कोई दे तो ले ले।

३ गृहस्थ ने काम में ले लिये हो या काम में ले रहा हो ऐसे दो-तीन पात्र में से एक को मांगे या कोई दे तो ले ले।

४. पैक देने योग्य जिसको कोई भिखारी याचक लेना न चाहे ऐमा ही पात्र मागे या कोई दे तो ले ले ।

इनमें से कोई एक नियम लेने वाला दूसरे की अवहेलना न करे (भिक्षा अध्ययन के सूत्र ६३, पृष्ठ ८३ के अनुसार) ।

इन नियमों के अनुसार पात्र मांगने जाने वाले भिक्षु को गृहस्थ देने का वचन-म्यान ठे अथवा 'पात्र तेल, घी आदि लगाकर या सुगन्धित पदार्थ, ठंडे या गरम पानी से साफ करके दे तां (वस्त्र अध्ययन के सूत्र १४६, पृष्ठ १०६ के अनुसार) उसको सदीप जान कर न ले ।

यदि गृहस्थ भिक्षुको कहे कि, 'तुम थोड़ी देर ठहरो, हम भोजन तैयार करके पात्र में आहार भर कर तुमको देंगे, भिक्षु को खाली पात्र देना योग्य नहीं है ।' इस पर भिक्षु पहिले ही मना कर दे और इतने पर भी गृहस्थ वैसा करके ही देने लगे तो वह न ले ।

गृहस्थ से पात्र लेने के पहिले भिक्षु उसे देख भाल ले; सम्भव है, उसमें जीव जन्तु, वनस्पति आदि हो ।

(आगे, वस्त्र अध्ययन के सूत्र १४७-१४८, पृष्ठ १०७-१०८ के अनुसार सिर्फ सुखाने की जगह 'पात्र यदि तेल, घी आदि से भरा हो तो निर्जीव जमीन देख कर वहां उसे सावधानी से साफ कर ले,' ऐमा समझें ।) [१५२]

गृहस्थ के घर भिक्षा लेने जाते समय पात्र को पहिले देख भाल कर साफ कर ले जिससे उसमें जीवजन्तु या धूल न रहे । [१५३]

गृहस्थ भिक्षु को टंडा पानी लाकर देने लगे तो वह उसे सत्रोप जान कर न ले पर यदि अचानक अनजान में आ जाय तो उसको फिर (गृहस्थ के वर्तन के) पानी में डाल दे, (यदि न डालने दे तो कुण्ड आदि के पानी में डाल दे) या गीली जमीन पर डाल दे । ऐसा न हो सके तो पानी सहित उस पात्र को ही छोड़ दे ।

भिक्षु अपने गीले पात्र को पोछे या तपावे नहीं ।

भिक्षु गृहस्थ के घर भिक्षा लेने जाते समय पात्र साथ में ले जावे ... आदि वस्त्र अध्ययन के सूत्र १२०-१२१, पृष्ठ १०८-१०९ के अनुसार ।

भिक्षु या भिक्षुणी के आचार की यही सम्पूर्णता है.. आदि भाषा अध्ययन के अन्त-पृष्ठ १०४ के अनुसार ।



सातवाँ अध्ययन

—(०)—

अवग्रहः

८६-६८८८

“प्रव्रज्या लेकर, मैं बिना घर-बार का, धन-धान्य पुत्र आदि से रहित, और दूसरो का दिया हुआ खाने वाला श्रमण होऊँगा और पापकर्म कभी नहीं करूँगा। हे भगवन्। दूसरो के दिये बिना किसी वस्तु को लेने का (रखनेका) प्रयारथान (त्याग का नियम) करता हूँ।”

ऐसा नियम लेने के बाद भिक्षु, गाव नगर या राजधानी में जाने पर दूसरो के दिये बिना कोई वस्तु ग्रहण न करे, दूसरों से न करावे और कोई करना हो तो अनुमति न दे। अपने साथ प्रव्रज्या लेने वाले भिक्षुयो के पात्र, ढंड आदि कोई भी वस्तु उनकी अनुमति लिये बिना और देखभाल किये बिना, साकल किये बिना, न ले। [१५५]

भिक्षु, सराय आदि स्थान देख कर, वह स्थान अपने योग्य है या नहीं यह सोच कर फिर उसके मालिक या व्यवस्थापक से वहाँ ठहरने की (शय्या अध्ययन के सूत्र ८६-६०, पृष्ठ ८८ के अनुसार) अनुमति ले।

अवग्रह का अर्थ ‘अपनी वस्तु—परिग्रह’ और ‘निवास-स्थान’ दोनों होते हैं, इस अध्ययन में दोनों के सम्बन्ध के नियमों की चर्चा है।

स्थान मिलने के बाद, उस मकान में दूसरे श्रमण ब्राह्मण आदि पहिले से ठहरे हों, उनके पात्र आदि वस्तुएँ इधर-उधर न करे, वे अंधते हो तो न जगावे। संक्षेप में, उनको दुःखकारक या प्रतिकूल हो, ऐसा न करे। [१२६]

वहाँ अपने समान धर्मी या सहभोजी सदाचारी माधु आर्वे तो उनको अपना लाया हुआ आहारपानी, पाट-पाटला विक्राने की वस्तुएँ आदि देने के लिये कहें, पर दूसरों के लाये हुए आहार-पानी आदि के लिये बहुत आग्रह न करे। [१२६-१५७]

वहाँ गृहस्थ या उनके पुत्र आदि के पास से सूँड़े, उस्तरा, कान-सली या नेरनी आदि वस्तुएँ वापिस लौटाने का वचन देकर अपने लिये ही मांग लाया हो तो उनको दूसरो को न दे; पर अपना काम पूरा होते ही उसे गृहस्थ के पास ले जावे, और अपने खुले हाथ में या जमीन पर रख कर, 'यह है, यह है,' ऐसा कहे; खुद उसके हाथ में न दे। [१२७]

किसी श्रमराई में ठहरा हो और आम खाने की इच्छा हो जाय तो जीवजन्तु वाले आम, और जिमको काटकर, टुकड़े करके निर्जीव न किया हो, न ले। जो आम जीवजन्तु से रहित, चारकर टुकड़े कर निर्जीव किया हुआ हो, उमको ले।

गन्ने के खेत या लहसन के खेत में ठहरा हो तो भी ऐसा ही करे। [१६०]

भिन्न उपरोक्त दोष टाल कर नीचे के सात नियमों में से एक नियम के अनुसार स्थान को ग्रह करे।

१. सराय आदि स्थान देखकर वह स्थान अपने योग्य है या

नहीं, यह सोच कर, उसके मालिक से पहिले बताये अनुसार अनु-
मति लेकर उसे प्राप्त करे ।

० मैं दूसरे भिक्षुओं के लिये स्थान मांगूंगा और दूसरे भिक्षुओं
के मांगे हुए स्थान में ठहरूंगा ।

३. मैं दूसरे भिक्षुओं के लिये स्थान मांगूंगा परन्तु दूसरे के
मांगे हुए स्थान में नहीं ठहरूंगा ।

४. मैं दूसरे के लिये स्थान नहीं मांगूंगा परन्तु दूसरे के मांगे
हुए स्थान में ठहरूंगा ।

५. मैं अपने अकेले के लिये स्थान मांगूंगा, दूसरे दो, तीन, चार,
पाच के लिये नहीं ।

६ जिमके मकान में, मैं स्थान प्राप्त करूंगा, उससे ही घास
आदि (शय्या अभ्ययन के अनुसार) की शय्या माग लूंगा, नहीं तो
ऊकड़ू या पालकी लगा कर बैठा-बैठा रात निकाल लूंगा ।

७ जिमके मकान में ठहरूंगा, उमके वहाँ पत्थर या लकड़ी की
पटरी, जैसी भी मिल जाय, उम्नी पर सो रहूंगा, नहीं तो ऊकड़ू
या पालकी लगा कर बैठा-बैठा रात निकाल दूंगा ।

इन सातो में से एक नियम लेने वाला दूसरे की श्रवहेलना
न करे . आदि भिक्षु अभ्ययन के अन्त पृष्ठ ८३ के अनुसार । [१६१]

भिक्षु या भिक्षुणी के आचार की यही सम्पूर्णता..... आदि
भाषा अभ्ययन के अन्त-पृष्ठ १०४ के अनुसार । [१६२]



आठवाँ अध्ययन

—(०)—

खड़ा रहने का स्थान*

भिच्छु या भिच्छुणी को खड़ा रहने के लिये स्थान की जरूरत पड़े तो वह गांव, नगर या राजधानी में जाये। वह स्थान जीवजन्तु वाला हो तो उसको सटोप जानकर मिलाने पर भी न ले. . . शय्या अध्ययन के सूत्र ६४ और ६५-पृष्ठ-८५ ८४ के वन्दमूल के वाक्य तक के अनुसार।

भिच्छु इन सब दोषो को त्याग कर, नीचे के चार नियमों में से एक के अनुसार खड़ा रहने का निश्चय करे—

१. अचित्त स्थान पर खड़ा रहने, अचित्त वस्तु का अवलम्बन लेने, हाथ-पैर फैलाने-सिकोड़ने और कुछ फिरने का नियम ले।

२ फिरने को छोड़ कर, बाकी सब ऊपर लिखे अनुसार ही नियम ले।

३. अवलम्बन किसी का होने को छोड़कर, बाकी सब ऊपर लिखे अनुसार ही नियम ले।

४ अचित्त स्थान पर खड़ा रहने, अवलम्बन किसी का न लेने, हाथ पैर न फैलाने-सिकोड़ने, न फिरने का और शरीर, बाल

आठ से चौदह तक के अध्ययन दूसरी चूड़ा है।

दाटी. रोम और नाग्वून का भाग त्याग कर (परिमित काल तक) बिना हिले-चले खड़ा रहने का नियम ले।

इन चार्जों में से एक नियम लेने वाला दूसरे की अवहेलना न करे आदि भिला अध्ययन के अन्त-पृष्ठ ८३ के अनुसार।

भिजु या भिजुणी के आचार की यही सम्पूर्णता है . आदि भाषा अध्ययन के अन्त-पृष्ठ १०४ के अनुसार। [१६]



नौवाँ अध्ययन

—(०)—

निशीथिका-स्वाध्याय का स्थान

भिजु या भिजुणी को स्वाध्याय करने के लिये स्थान की जरूरत पड़े तो गांव, नगर या राजधानी में जावे और जीवजन्तु से रहित स्थान को ही स्वीकार करे . . . आदि शय्या अध्ययन के सूत्र ६४ और ६५, पृष्ठ ८४-८५ के कन्दमूल के वाक्य तक के अनुसार।

यहाँ दो, तीन, चार या पांच भिजु स्वाध्याय के लिये जधें तो वे मव आपस में एक-दूसरे के शरीर को आर्लिगन न करें, चुम्बन न करें, या दांत-नख न लगावें।

भिजु या भिजुणी के आचार की यही सम्पूर्णता है-आदि भाषा अध्ययन के अन्त-पृष्ठ १०४ के अनुसार। [१६४]

दसवाँ अध्ययन

—(०)—

मलमूत्र का स्थान

भिच्छु या भिच्छुणी को मलमूत्र की शंका हो और उसके पाम सरावला न हो तो अपने सहधर्मी से मांग ले; उसमें मल-मूत्र करके निर्जीव स्थान पर डाल दे।

जो स्थान गृहस्थ ने एक या अनेक सहधर्मी भिच्छु या भिच्छुणी के लिये तैयार किया हो .. (वस्त्र ग्रन्थयन के सूत्र १४३ पृष्ठ १०५ के अनुसार) तो सदोप जान कर उसमें मल-मूत्र न करे।

जिस स्थान को गृहस्थ ने भिच्छु के लिये तैयार किया या कराया हो, बराबर कराया हो, सुत्राम्नि कगया हो, वहाँ वह मल-मूत्र न करे।

जिस स्थान में से गृहस्थ या उसके पुत्र आदि कंद, मूल, वनस्पति आदि को इधर-उधर हटाते हो, उसमें भिच्छु मलमूत्र न करे।

भिच्छु उंचे स्थानों पर मल-मूत्र न करे।

भिच्छु जीवजन्तु वाली, गीली, धूल वाली, कच्ची मिट्टी वाली जमीन पर मलमूत्र न करे और सजीव शिला, डेले, कीड़े वाली लकड़ी पर या ऐसे ही सजीव स्थान में मलमूत्र न करे। [१६६]

जिस स्थान पर गृहस्थ आदि ने कंदमूल, वनस्पति आदि डाले हो, डालते हो या डालनेवाले हो, वहाँ भिच्छु मलमूत्र का त्याग न करे।

जिस स्थान पर गृहस्थ आदिने मृग, उड़ड़, तिल्ली, कुलथी, जी आदि बोये हो, वहाँ भिक्षु मल-मूत्र का त्याग न करे।

जहाँ मनुष्यों के लिये भोजन बनता हो, या भैंस, पाड़े घोड़े, कवृतर आदि पशुपत्नी रखे जाते हो वहाँ भिक्षु मलमूत्र का त्याग न करे।

जिस स्थान पर मनुष्य किसी इच्छा से फाँसी लेते हों खुद को गीदड़ों से नुचवाते हो, पेड़ या पर्वत से गिरकर मरते हो, विप खाते हो, अग्निप्रवेश करते हो, वहाँ भिक्षु मलमूत्र का त्याग न करे।

भिक्षु आराम, उद्यान, वन, उपवन, देवमंदिर, सभागृह या प्याऊ आदि स्थानों पर मलमूत्र का त्याग न करे।

भिक्षु किले के बुर्ज, किले या नगर के मार्ग, दरवाजे और गोपुर आदि स्थानों पर मलमूत्र का त्याग न करे।

जहाँ तीन या चार रास्ते मिलते हो, वहाँ भिक्षु मलमूत्र का त्याग न करे।

निवाड़ा, चूने की भट्टी, श्मशान, स्तूप, देवमंदिर, नदी पर के तीर्थ नदी किनारे के स्थान, तालाब के पवित्र स्थान, पानी-नाली, मिट्टी की नई खान, नया गोचर, खान या शाक पत्र, फूल, फल आदि के स्थान में भिक्षु मलमूत्र का त्याग न करे। [१६६]

भिक्षु अपना या दूसरे का पात्र लेकर, खुले बाड़े में या स्थानक में एकान्त जगह पर, कोई देख न सके और जीवजन्तु से रहित स्थान पर जावे, वहाँ मलमूत्र करके, उस पात्र को लेकर खुले बाड़े में या जली हुई जमीन पर या ऐसी ही कोई निर्जीव जगह पर एकान्त में कोई देखे नहीं, वहाँ उसको सावधानी से डाल आवे। [१६३]

भिक्षु या भिक्षुणी के आचार की यही सम्पूर्णता है... ..आदि भाषा अच्ययन के अन्त-पृष्ठ १०४ के अनुसार।

ग्यारहवाँ अध्ययन

—(०)—

शब्द

८२८

भिन्नु या भिन्नुणी चारों प्रकार (१. मढ़े हुए वाद्य-सृदंग आदि, २. तंतु वाद्य-नार आदि से खिंचे हुए व्रीणा आदि, ३. ताल वाद्य-भाभ आदि, ४ शुपिरवाद्य-फूंक से बजने वाले, शंग्र आदि) के वाद्यों के शब्द सुनने की इच्छा से कहीं न जावे । [१६८]

भिन्नु या भिन्नुणी अनेक स्थानों पर होने वाले विविध प्रकार के शब्द सुनने कहीं न जावे ।

भिन्नु पाड़े, बैल, हाथी या कर्पिजल पत्नी की लडाईं के शब्द सुनकर वहाँ न जावे । वर कन्या के लग्नमंडप या कथा मंडप में भी न जावे दूमी प्रकार हाथी घोड़े आदि की वाजीमे या जहाँ नाचगान की धूम मची हो, वहाँ भिन्नु न जावे । [१६९]

जहाँ खींचतान मची हो, लडाईं भगडे हो रहे हो या दो राज्यों के बीच झगडा हो, वहाँ न जावे ।

लकड़ी को सजाकर, घोड़े पर बैठाकर उसके आसपास होकर लोग जा रहे हो या किसी पुरुष को मृत्युदंड देने को वधस्थान पर खे जा रहे हो तो वहाँ न जावे ।

जहाँ अनेक गाड़ियाँ, रथ अथवा ग्लेच्छ या सीमान्त लोगों के झुंड हो या मेले हो, वहाँ भी न जावे ।

तेरहवाँ अध्ययन

—(०)—

पर क्रिया

३५६६

भिजु अपने सम्बन्ध में गृहस्थो द्वारा की हुई निम्न कर्मबन्ध करनेवाली क्रियाओं की इच्छा न करे और वे करते हो तो स्वीकार न करे। (उनका नियमन-प्रतिरोध न करे)

जैसे—कोई गृहस्थ भिजु के पैर पोछे, दावे; उनके ऊपर हाथ फेरे; उनको रंगे, उनको तेल, घी अन्य पदार्थ से मसले या उन पर चुपड़े, पैरो को लोध्र, कल्क चूर्ण या रंग लगावे; उनको ठंडे या गरम पानी से धोवे; उन पर किसी वस्तु का लेप करे या धूप दे, पैर में से कील या कांटा निकाल डाले; उनमें से पीप, लोही आदि निकाल कर अच्छा करे, तो वह उसकी इच्छा न करे और न उसको स्वीकार करे।

इसी प्रकार शरीरके सम्बन्ध में और उसके घाव फोड़े, उपद्रंश भगंदर आदि के सम्बन्ध में भी समझे।

कोई गृहस्थ भिजु का पसीना, भैल या आंख कान और नाखून का भैल साफ करे. या कोई उसके बाल, रोम अथवा भों, बगल या गुह्यप्रदेश के बाल लम्बे देखकर काट डाले, या छोटे करे, तो वह इच्छा न करे और न उसको स्वीकार करे।

कोई गृहस्थ भिजु के सिर से जूं, लीख बीने; उसको गोद या पलंग में सुलावे, उसके पैर आदि दावे-मसले, हार, अर्धहार,

पन्द्रहवाँ अध्ययन

—(०)—

भावनार्णः।

६८८

(१)

(भगवान् महावीर ने पांच महाव्रतों की भावनाओं का जो उपदेश दिया है, उसको कहने के लिये पहिले भगवान् का जीवन-चरित्र यहां दिया है।)

भगवान् महावीर के जीवन-काल की पांच मुख्य घटनाओं में पांचों के समय उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र था—देवलोक से ब्राह्मणी माता के गर्भ में आये तब; ब्राह्मणी माता के गर्भ से क्षत्रियाणी माता के गर्भ में संक्रमण हुआ तब, जन्म के समय, प्रव्रज्या के समय और केवलज्ञान के समय। मात्र भगवान् का निर्वाण ही स्वाति नक्षत्र में हुआ। [१३५]

भगवान्, इस युग-अवसर्पिणी के पहिले तीन आरे (भाग) वीत जाने पर और चौथे के मात्र ७५ वर्ष और साढे नौ मास बाकी थे तब, ग्रीष्म के चौथे महिने में, आठवें पक्ष में, आपाठ शुक्ल षष्ठ को, उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में, दसवें देवलोक के अपने पुत्रोत्तर विमान में अपना देव आयुष्य पूरा करके, जंबुद्वीप में, भरत क्षेत्र के दक्षिणार्ध में कुंडग्राम के ब्राह्मण विभाग में कोडालगोत्रीय ऋषभदत्त ब्राह्मण की पत्नी जलंधरायण गोत्र की देवानन्दा ब्राह्मणी की कुली में सिंह के बच्चे के समान अवतीर्ण हुए।

यह अध्ययन तीसरी चूड़ा है।

फिर (गणेश की आज्ञा से उसकी पैदल सेना के अधिपति हगिशागसेमि) देवने (तीर्थकर, जत्रियाणी की कुत्ती से ही जन्म लेते हैं) ऐसा आचार है, यह मानकर, वर्षाऋतु के तीसरे मास में, पांचवें पक्ष में, आश्विन कृष्ण त्रयोदशी को, ८२ दिन व्रतने के बाद ८३ वें दिन कुंडग्राम के दक्षिण में ब्राह्मण, विभाग में से भगवान् महावीर के गर्भ को लेकर, कुंडग्रामके उत्तर में जत्रिय-विभाग में, ज्ञानवंशीय जत्रियो में काश्यपगोत्रीय भिन्दार्थ की पत्नी वसिष्ठ गोत्रवाली त्रिशला जत्रियाणी की कुत्ती में, अशुभ परमाणु निकाल कर, उनके स्थान पर शुभ परमाणु डाल कर रख दिया। और जो गर्भ त्रिशला जत्रियाणी को था, उसको देवानन्दा ब्राह्मणी की कुत्ती में रख दिया।

तीसरे मास और साठे मास दिन व्रतने के बाद, त्रिशला जत्रियाणी ने श्रीमत् के पहिले महीने में, दूसरे पक्ष में, चैत्र शुक्ल त्रयोदशी को श्रमण भगवान् महावीर को कुशलपूर्वक जन्म दिया। उसी रात को देव-देवियो ने श्रमृत, गंध, चूर्ण, पुष्प और रत्नों की बड़ी वृष्टि की, और भगवान् का अभिषेक, तिलक रक्षावन्धन आदि किया।

जब से भगवान् त्रिशला जत्रियाणी की कुत्ती में आये, तब से उनका कुल धन-धान्य, सोना-चांदी, रत्न आदि से बहुत वृद्धि को प्राप्त होने लगा। यह बात उनके माता-पिता के ध्यान में आते ही, उन्होंने दस दिन व्रत जाने और अशुचि दूर हो जाने पर, बहुतसा भोजन तैयार कराके अपने सगे-सम्बन्धियों को निमन्त्रण दिया, उन को और याचकों को खिला-पिलाकर सबको भगवान् महावीर के गर्भ में आने के बाद से कुल की वृद्धि होने की बात कही, कुमार का नाम ' वर्धमान ' रखा।

भगवान् महावीर के लिये पांच दाइयाँ रखी गई थी, दूध पिलाने वाली, स्नान कराने वाली, कपटेलते पहिनाने वाली, खेलाने

वाली, और गोठ में रखने वाली। इन पांचो ढाढ़्यों से घिरे हुए, एक गोठ में से दूसरी की गोठ में जाते रहने वाले भगवान्, पर्वत भी गुफा में रहे हुए चपक वृक्ष के समान अपने पिताके रम्य महल में वृद्धि को प्राप्त होने लगे।

वाल्यावस्था पूरी होने पर, सर्वकलाकुशल भगवान् महावीर अनुसुकता से पांच प्रकार के उत्तम मानुषिक काम भोग भोगते हुए रहने लगे।

भगवान् के नाम तीन थे—माता—पिता का रखा हुआ नाम, 'वर्धमान', अपने वैराग्य आदि सहज गुणों से प्राप्त, 'श्रमण' और अनेक उपसर्ग परिपह सहन करने के कारण देवों का रखा हुआ नाम, 'श्रमण भगवान् महावीर।'

भगवान् के पिता के भी तीन नाम थे, सिद्धार्थ, श्रेयास, और जयस (यशस्वी) ? माता के भी त्रिशला, विदेहदिज्ञा और प्रियकारिणी तीन नाम थे। भगवान् के काका का नाम सुपार्श्व था। बड़े भाई का नाम नन्दिवर्धन और बड़ी बहिन का नाम सुदर्शना था।

भगवान् की पत्नी यशोदा कौटिल्य गोत्र की थी। उनकी पुत्री के दो नाम थे—अनवद्या और प्रियदर्शना। भगवान् की दोहिनी कौणिक गोत्र की थी, उसके भी दो नाम थे—शेषवती और यशोमती। [१७७]

भगवान् के माता पिता पार्श्वनाथ की परम्परा के श्रमणों के अनुयायी (उपासक) थे। उन्होंने बहुत वर्षों तक श्रमणोपासक के आचार पालकर अन्त में छू मय जीवों की रक्षा के लिये आहार पानी

का त्याग (अपश्चिम मारणांतिक सलेखना) करके देहत्याग किया। तब वे अस्युतकल्प नामक वारहवें स्वर्ग में देव हुए। वहाँ से वे महाविदेह क्षेत्र में जाकर अन्तिम उत्सवास के समय मिन्द्र, बुद्ध और सुक्त होकर निवारण को प्राप्त होगे, और सब दुःखों का अन्त करेंगे।
[१७८]

भगवान् महावीर ने तीस वर्ष गृहस्थाश्रम में रह कर प्रपने मात पिता का देहान्त होने पर अपनी प्रतिज्ञा (माता-पिता के देहान्त होने पर प्रव्रज्या लेने की) पूरी करने का समय जानकर अपना धन-धान्य, मोना-चाँदी रत्न आदि याचकों को दान देकर, हेमन्त ऋतु के पहिले पत्र में, मार्गशीर्ष कृष्णा दशमी को प्रव्रज्या लेनेका निश्चय किया

भगवान्, सूर्योदय के समय से दूमेरे दिन तक एक करोड़ और आठ लाख सोनैया (मुहर) दान देते थे। इस प्रकार पूरे एक वर्ष तक भगवान् ने तीन अरब, अठासी करोड़ और अस्सी लाख सोने की मुहरें दान में दी। यह सब धन इन्द्र की आज्ञा से वैश्रमण (कुबेर देव) और उनके देव महावीर को पूजा करते थे।

पन्द्रह कर्मभूमि में ही उत्पन्न होने वाले तीर्थंकर को जय दीक्षा लेने का समय निकट आता है, तब पांचवें कल्प ब्रह्मलोक में काली रेखा के विमानों में रहने वाले लोकांतिक देव उनको आकर कहते हैं — 'हे भगवान्! सकल जीवों के हित कारक भर्मतीर्थ की आप स्थापना करें।' इसी के अनुसार २६ वें वर्ष उन देवों ने आकर भगवान् से ऐसी प्रार्थना की।

वार्षिक दान पूरा होने पर, तीसवें वर्ष में भगवान् ने दीक्षा लेने की तैयारी की। उस समय, सब देव-देवी अपनी समस्त

समृद्धि के साथ अपने विमानों में बैठकर कुंडग्राम के उत्तर में क्षत्रियविभाग के ईशान्य में आ पहुँचे ।

हेमन्त ऋतु के पहिले महिने में, प्रथम पक्ष में, मार्गशीर्ष कृष्ण दशमी को सुव्रत नामक दिन को, विजय सुहूर्त में, उत्तम-फाल्गुनी नक्षत्र में, छाया पूर्व की और पुरुषाकार लम्बी होने पर भगवान् को शुद्ध जल से स्नान कराया गया और उत्तम सफेद वारीक दो वस्त्र और आभूषण पहिनाये गये । बादमें उनके लिये चन्द्रप्रभा नामक बड़ी सुशोभित पालकी लाई गई, उसमें भगवान् निर्भल शुभ मनोभाव से विराजे । उस समय उन्होंने एक ही वस्त्र धारण किया था । फिर उनको धूमधाम से गाते बजाने गांव के बाहर ज्ञातृवंशी क्षत्रियों के उद्यान में ले गये ।

उद्यान में आकर, भगवान् ने पूर्वाभिमुख बैठ कर सब आभूषण उतार डाले और पांच मुद्रियों में, दाहिने हाथ से दाहिने ओर के और बाँये हाथ से बायीं ओर के सब बाल उखाड डाले । फिर सिद्ध को नमस्कार करके, 'आगे से मैं कोई पाप नहीं करूँगा,' यह नियम लेकर सामायिक चारित्र का स्वीकार किया । यह सब देव और मनुष्य चित्रवत् स्तब्ध होकर देखते रहे ।

भगवान् को ज्ञायोपशमिक सामायिक चारित्र लेने के बाद मन.— पर्यवज्ञान प्राप्त हुआ । इससे वे मनुष्यलोक के पंचेन्द्रिय और संज्ञी जीवों के मनोगत भावों को जानने लगे ।

प्रब्रज्या लेने के बाद, भगवान् महावीर ने मित्र, ज्ञाति, स्वजन और सम्बन्धियों को विदा किया और खुद ने यह नियम लिया कि अब से बारह वर्ष तक मैं शरीर की रक्षा या ममता रखे बिना, जो कुछ परिपह और उपसर्ग आवेंगे, उन सबको

अडग होकर सहन करूंगा और उपसर्ग (विघ्न) देने वाले के प्रति समभाव रखूंगा । ऐसा नियम लेकर महावीर भगवान् एक सुहूर्त दिन बाकी था तब कुम्भार ग्राम में आ पहुँचे ।

इसके बाद, भगवान् शरीर की ममता छोड़कर विहार (एक स्थान पर स्थिर न रहकर विचरते रहना), निवास स्थान, उपकरण (साधन सामग्री), तप संयम, ब्रह्मचर्य, शान्ति, त्याग, संतोष, समिति, गुप्ति आदि में सर्वोत्तम पराक्रम करते हुए और निर्वाण की भावना से अपनी आत्मा को भावित करने हुए विचरने लगे ।

वे उपकार-अपकार, सुख-दुःख, लोक-परलोक, जीवन-मृत्यु मान-अपमान आदि में समभाव रखने, संसार समुद्र पार करने का निरन्तर प्रयत्न करने और कर्मरूपी शत्रु का समुच्छेद करने में तत्पर रहते थे ।

इस प्रकार विचरते हुए भगवान् को देव, मनुष्य या पशु-पक्षी आदि ने जो उपसर्ग दिये, उन सबको उन्होंने अपने मनको निर्मल रखते हुए, बिना व्यथित हुए, अदीनभाव से सहन किये, और अपने मन, वचन और काया को पूरी तरह वश में रखा ।

इस प्रकार बारह वर्ष बीतने पर, तेरहवें वर्ष में, ग्रीष्म के दूसरे महिने में, चौथे पक्ष में वैशाख शुक्ल दशमी को, सुव्रत दिन को, विजय सुहूर्त में, उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र में, छाया पूर्व की और पुरुषाकार लम्बी होने पर, जाम्बक गाँव के बाहर, ऋजुवालिका नदी के उत्तर किनारे पर, श्यामाक नामक गृहस्थ के खेत में, वेयावत्त नामक चैत्य के डेसान्य में, शालिवृत्त के पास, भगवान् गोदोहास न से ऊरुडू बैठे ध्यान मग्न होकर धूप में तप रहे थे । उस समय उनको अहमभक्त (छ वार अनशन का) निर्जल उपवास था और वे शुद्धध्यान में थे । उस समय उनको निर्वाणरूप,

सम्पूर्ण (सब वस्तुओं का) प्रतिपूर्ण (सब वस्तुओं के सम्पूर्ण भावों का), अव्याहत (कहीं न रुकनेवाला), निरावरण, अनन्त और सर्वोत्तम ऐसा केवल ज्ञानदर्शन उत्पन्न हुआ ।

अब भगवान् अर्हत (त्रिभुवन की पूजा के योग्य) जिन (गगद्वे-पाटिको जीतने वाले), केवली, सर्वज्ञ और समभावदर्शी हुए ।

भगवान् को केवल ज्ञान हुआ, उस समय देव-देवियों के आने जाने से अतरिक्त मैं धूम मची थी । भगवान् ने पहिले अपने को और फिर लोक को देखभाल कर पहिले देवलोगोप्ते धर्म कह सुनाया और फिर मनुष्यों को । मनुष्यों से भगवान् ने गौतम आदि श्रमण निर्ग्रन्थों की भावनाओं के साथ पांच महाव्रत इस प्रकार कह सुनाये:-

पहिला महाव्रत—मैं समस्त जीवों की हिंसा का यावज्जीवन त्याग करता हूँ । स्थूल, सूक्ष्म, स्थावर या त्रस किसी भी जीवकी मन, वचन और काया से मैं हिंसा न करूँ, न दूसरो से कराऊँ, और करते हुए को अनुमति न दूँ । मैं इस पाप से निवृत्त होता हूँ, इसकी निंदा करता हूँ, गर्हा करता हूँ, और अपने को उससे मुक्त करता हूँ ।

इस महाव्रत की पांच भावनाएं ये हैं—

पहिली भावना—निर्ग्रन्थ किसी जीव को आघात न पहुँचे, इस प्रकार सावधानीसे (चार हाथ आगे दृष्टि रख कर) चले क्योंकि असावधानी से चलनेसे जीवों की हिंसा होना संभव है ।

दूसरी भावना—निर्ग्रन्थ अपने मन की जांच करे, उसको पाप-युक्त, मद्रोप, सक्रिय, कर्मबन्धन करनेवाला और जीवों के वध, छेदन भेदन और कलह, द्वेष या परिताप युक्त न होने दे ।

नीमरी भावना-निर्ग्रन्थ अपनी भाषा की जांच करे; उसको (मन के समान ही) पापयुक्त, सद्गोप और कलह, द्वेष और परिताप युक्त न होने दे ।

चौथी भावना-निर्ग्रन्थ वस्तुमात्र को बराबर देखभाल कर, साफ करके ले या रखे क्योंकि असावधानी से लेने-रखने में जीवो की हिंसा होना संभव है ।

पांचवीं भावना-निर्ग्रन्थ अपने आहार-पानी वो भी देखभाल कर काम में ले क्योंकि असावधानी से लेने में जीवजन्तु की हिंसा होना संभव है ।

निर्ग्रन्थ के इतना करने पर ही, यह कह सकते हैं कि उसने महाभ्रत को बराबर स्वीकार किया, पालन किया, कार्यान्वित किया या जिनों की आज्ञा के अनुसार किया ।

दूसरा महाव्रत-मैं सब प्रकार के असत्यरूप वाणी के दोष का यावज्जीवन त्याग करता हूँ । क्रोध से, लोभ से, भय से या हंसी से, मैं मन, वचन और काया से असत्य नहीं बोलूँ, दूसरो से न बुलाऊँ और बोलते हुए को अनुमति न दूँ । (मैं इस पाप से.....आदि पहिले व्रत के अनुसार ।)

इस महाव्रत की पांच भावनाएँ ये हैं—

पहिली भावना-निर्ग्रन्थ विचार कर बोले क्योंकि बिना विचारे बोलने से असत्य बोलना सम्भव है ।

दूसरी भावना- निर्ग्रन्थ क्रोध का त्याग करे क्योंकि क्रोध में असत्य बोलना सम्भव है ।

नीसरी भावना—निर्ग्रन्थ लोभ का त्याग करे क्योंकि लोभ के कारण असत्य बोलना सम्भव है ।

चौथी भावना—निर्ग्रन्थ भय का त्याग करे क्योंकि भय के कारण असत्य बोलना सम्भव है ।

पांचवीं भावना—निर्ग्रन्थ हंसी का त्याग करे क्योंकि हंसी के कारण असत्य बोलना सम्भव है ।

इतना कर परने ही, कह सकते हैं कि उसने महाव्रत का बराबर पालन किया । (आदि पहिले व्रत के अनुसार)

नीसरा महाव्रत—मैं सब प्रकार की चोरी का यावज्जीवन त्याग करता हूँ । गांव, नगर या वन में से थोडा या अधिक, बडा या छोटा, सचित्त या अचित्त कुछ भी दूसरो के दिये बिना न उठा लूँ, न दूसरो से उठवाऊँ न किसी को उठा लेने की अनुमति हूँ । (आदि पहिले के अनुसार ।)

इस महाव्रत की पांच भावनाएँ ये हैं ।

पहिली भावना—निर्ग्रन्थ विचार कर मित परिमाण में वस्तुएँ मांगे ।

दूसरी भावना—निर्ग्रन्थ मांग लाया हुआ आहार—पानी आचार्य आदि को बता कर उनकी आज्ञा से ही खावे ।

तीसरी भावना—निर्ग्रन्थ अपने निश्चित परिमाण में ही वस्तुएँ मागे ।

चौथी भावना—निर्ग्रन्थ बारबार वस्तुओ का परिमाण निश्चित कर के मांगे ।

पांचवीं भावना—निर्ग्रन्थ सहधर्मियो के सम्बन्ध में (उनके लिये या उनके पास से) विचार कर और मित परिमाण में ही वस्तुएँ मांगे ।

इतना करने पर ही, कह सकते हैं कि उसने महाव्रत का पालन किया ।

चौथा महाव्रत—मैं सब प्रकार के मैथुन का यावज्जीवन त्याग करता हूँ । मैं देव, मनुष्य और तिर्यंच सम्बन्धी मैथुनको स्वयं सेवन न करूँ दूसरो से सेवन न कराऊँ और करते हुए को अनुमति न दूँ । (आदि पहिले के अनुसार ।)

इस महाव्रत की पांच भावनाएँ ये हैं—

पहिली भावना—निर्ग्रन्थ बारवार स्त्री—सम्बन्धी बातें न करे क्योंकि ऐसा करने से उसके चित्त की शांति भंग होकर, केवली के उपदेश दिये हुए धर्म से अष्ट होना सम्भव है ।

दूसरी भावना—निर्ग्रन्थ स्त्रियों के मनोहर अंगों को न देखे और न विचारे ।

तीसरी भावना—निर्ग्रन्थ स्त्री के साथ पहिले की हुई कामक्रीडा को याद न करे ।

चौथी भावना—निर्ग्रन्थ परिमाण से अधिक और कामोद्दीपक आहार पानी सेवन न करे ।

पाचवीं भावना—निर्ग्रन्थ स्त्री, सादा-पशु या नपुंसक के आसन या शय्या को काम में न ले ।

इनने पर ही कह सकते हैं कि उसने महाव्रत का बराबर पालन किया ।

पाचवां महाव्रत—मैं सब प्रकार के परिग्रह (आसक्ति) का यावज्जीवन त्याग करता हूँ । मैं कम या अधिक, छोटी या बड़ी सचित्त या अचित्त कोई भी वस्तु से परिग्रह बुद्धि न रखूँ, न दूसरो से रखाऊँ और न रखते हुए को अनुमति दूँ । (आदि पहिले के अनुसार)

इम महाव्रत की पांच भावनाएँ ये हैं—

पहिली भावना—निर्ग्रन्थ कान से मनोहर शब्द सुन कर, उममें आसक्ति राग या मोह न करे, इसी प्रकार कटु शब्द सुनकर द्वेष न करे क्योंकि ऐसा करने से उसके चित्त की शांति भंग होना और केवली के उपदेश दिखे हुए धर्म से भ्रष्ट होना सम्भव है ।

कान में सुनाने शब्द रोके नहीं जा सकते, ।
पर उनमें जो राग द्वेष है, उसे भिक्षु त्याग दे ।

दूसरी भावना—निर्ग्रन्थ आंख से मनोहर रूप देख कर उममें आसक्ति न करे, कुरूप को देख कर द्वेष न करे ।

आंख से दिग्बता रूप रोका नहीं जा सकता,
परन्तु उनमें जो रागद्वेष है उसे भिक्षु त्याग दे ।

तीसरी भावना—निर्ग्रन्थ नाक से सुगन्ध सूँघ कर उममें आसक्ति न करे, दुर्गन्ध सूँघ कर द्वेष न करे ।

नाक से गंध आती रोकी नहीं जा सकती,
परन्तु उसमें जो रागद्वेष है, उसे भिक्षु त्याग दे ।

चौथी भावना—निर्ग्रन्थ जीभ से सुस्वादु वस्तु चखने पर उममें आसक्ति न करे, बुरे स्वाद की वस्तु चखने पर द्वेष न करे ।

जीभ में स्वाद आता रोका नहीं जा सकता
परन्तु उसमें जो रागद्वेष है, उसे भिक्षु त्याग दे ।

पाचवी भावना—निर्ग्रन्थ अच्छे स्पर्श होने पर उसमें आसक्ति न करे, बुरे स्पर्श होने पर द्वेष न करे ।

त्वचा से होने वाला स्पर्श रोका नहीं जा सकता,
परन्तु उसमें जो रागद्वेष है उसे भिक्षु त्याग दे ।

इतना करने पर ही, कह सकते हैं कि उसने महाव्रत का बराबर पालन किया ।

इन पांच महाव्रतों और इनकी पच्चीस भावनाओं से युक्त भिक्षु, शास्त्र, आचार और मार्ग के अनुसार उनको बराबर पाल कर ज्ञानियों की आज्ञा का आराधक सब्बा भिक्षु बनता है । [१७६]

सोलहवाँ अध्ययन विमुक्ति*

सर्वोत्तम ज्ञानी पुरुषों के इस उपदेश को सुन कर, मनुष्य को सोचना चाहिये कि चारों गति में जीव को अनित्य शरीर ही प्राप्त होता है। ऐसा सोचकर बुद्धिमान मनुष्य घर के बन्धन का त्याग करके दोषयुक्त प्रवृत्तियों और (उनके कारणरूप) आसक्ति का निर्भय होकर त्याग करे।

इस प्रकार घरदार की आसक्ति और अनन्त जीवों की हिंसाका त्याग करके, सर्वोत्तम भिक्षाचर्या से विचरने वाले विद्वान् भिक्षु को, मिथ्यादृष्टि मनुष्य, संग्राम में हाथी पर लगने वाले तीरों के समान बुरे वचन कहते हैं, और दूसरे कष्ट देते हैं। इन वचनों और कष्टों को उठाते हुए, वह ज्ञानी, मन को व्यथित किये बिना सब सहन करे और चाहे जैसी आंधी में भी अकंप रहने वाले पर्वत के समान अडग रहे।

भिक्षु सुख दुःख में समभाव रखकर ज्ञानियों की संगति में रहे, और अनेक प्रकार के दुःखों से दुःखी ऐसे ब्रह्म, स्थावर जीवों को अपनी किसी क्रिया से-परिताप न दे। इस प्रकार करने वाला और पृथ्वी के समान सब कुछ सहन कर लेने वाला महा मुनि श्रमण कहलाता है।

उत्तम धर्म-पद का आचरण करने वाला, तृष्णा रहित, ध्यान और समाधि से युक्त और अग्नि की ज्वाला के समान तेजस्वी ऐसे विद्वान् भिक्षु के तप, प्रज्ञा और यश वृद्धि को प्राप्त होते हैं।

* यह अध्ययन चौथी चूड़ा है।

सब दिशाओं में जम कर, महान्, सब कर्मों को दूर करने वाले और अन्धकार को दूर कर प्रकाश के समान नीचे तरफ-ऊपर नीचे और मध्य में प्रकाशित रहने वाले महाव्रता को सबकी रक्षा करने वाले अनन्त जिनमें प्रकट किये हैं ।

सब बंधे हुआ (आत्मिक से) में वह भिन्न अथवा होकर विचरे, मित्तियों में आसक्त न हो और सत्कार की अपेक्षा न रखे। इस लोक और परलोक की आशा त्यागने वाला वह पंडित काम भोगों में न फँसे ।

इस प्रकार काम भोगों से मुक्त रह कर, विवेकपूर्वक आचरण करनेवाले इस धृतिमान और महनशील भिन्न के, पहिचे किये हुए सब पापकर्म, अग्नि से चाँदी का मैल जैसे दूर हो जाता है, जैसे ही दूर हो जाते हैं, विवेक ज्ञान के अनुसार चलने वाला, आकांक्षा रहित और भैशुन से उपरत हुआ वह ब्राह्मण, जैसे साँप पुरानी कांचली को छोड़ देता है, जैसे ही दुःखशय्या से मुक्त होता है ।

अपार जलके समूहरूप महासमुद्र के समान जिस संसार को ज्ञानियों ने हाथों से दुन्तर कहा है । इस संसार के स्वरूप को ज्ञानियों के पास से समझ कर, हे पंडित, उसका तू त्याग कर । जो ऐसा करता है, वही मुनि (कर्मों का) 'अन्त करने वाला' कहा जाता है ।

इस लोक और परलोक दोनों में जिसको कोई बन्धन नहीं है और जो पदार्थों की आकांक्षा से रहित निरालम्ब और अप्रतिबद्ध है, वही गर्भ में आने जाने से मुक्त होता है; ऐसा मैं कहता हूँ ।

॥ समाप्त ॥

सुभाषित

अणंगचित्ते खलु अयं पुरिसे; से केयणं अरिहई पूरइ-
त्तए । (३: ११३)

संसार के मनुष्यों की कारनाओं का पार नहीं है, वे चलनी में पानी भरने का प्रयत्न करते हैं ।

कामा दुरतिकरुमा, जीवियं दुप्पडिवूहगं, कामकामी खलु
अयं पुरिसे, से सोयइ जूरइ तिप्पई परितप्पई । (२:९२)

काम पूर्ण होना असम्भव है और जीवन बढ़ाया नहीं जा सकता । कामेच्छु मनुष्य शोक किया करता है और परिताप उठाता रहता है ।

आसं च छन्दं च विमिंच धीरे । तुमं चेव तं सल्लमाहट्टु
जेण सिया तेण नो सिया । (२:८४)

हे धीर ! तू आशा और स्वच्छन्दता को त्याग दे । इन दोनों कांटो के कारण ही तू भटकता रहता है । जिसे तू सुख का साधन समझता है, वही दुख का कारण है ।

नालं ते तत्र ताणाए वा सरणाए वा, तुमंपि तेसिं नालं
तारणाए वा सरणाए वा । जागिन्तु दुखं पत्तेयसायं अण-
भिकन्तं च खलु वय संपेहाए खणं जाणाहि पंडिए जाव
सोत्तपरिन्नाणेहिं अपरिहायमाणेहिं आयट्ठं सम्मं समणुवा-
सेज्जासि-त्ति वेमि । (२: ६८-७१)

तेरे सगे-सम्बन्धी, विषय-भोग या द्रव्य-संपत्ति तेरी रक्षा नहीं कर सकते, और न तुझे वचा ही सकते हैं और तू भी उनकी रक्षा

नहीं कर सकता है और न उनको दत्ता सकता है। प्रत्येक को अपने सुख और दुःख खुद को ही भोगने पड़ते हैं। इस लिये, जब तक अवस्था मृत्यु के निकट नहीं है और कान आदि इन्द्रियों का बल और प्रज्ञा, स्मरणशक्ति आदि ठीक है तबतक अवसर जान कर बुद्धिमान मनुष्य को अपना कल्याण साध लेना चाहिये।

विमुक्ता ह्येते जणा, जे जणा पारगामिणो । लोभं
अलोभेण दुग्ञ्जमाणे लद्धे कामे नो'भिगाहइ । (२:७४)

जो मनुष्य विषयों को पार कर गये हैं, वे ही वास्तव में मुक्त हैं। अकाम से काम को दूर करने वाले वे, प्राप्त हुए विषयों में लिप्त नहीं होते।

समयं मृढे धम्मं नाभिजाणइ । उयाहु वीरे अप्प-
माओ महामोहे ! अलं कुसलस्स पमाएणं सन्तिमरणं संपे-
हाए, भेउरधम्मं संपेहाए (२:८४)

कामभोगों में सतत मूढ रहने वाला मनुष्य धर्म को पहिचान नहीं सकता। वीर भगवान ने कहा है कि महामोह में विलकुल प्रमाद न करे। शांति के स्वरूप और मृत्यु का विचार करके और शरीर को नाशवान् जान कर कुशल मनुष्य क्यों प्रमाद करे ?

सव्वं पाणा पियाउया, सुहसाया, दुक्खपडिकूला,
अप्पियवहा, पियजीविणो, जीविउकामा, सव्वेसिं जीवियं
पियं । मएण विप्पमाएणं पुढो वयं पक्कुच्चइ, जंसिमे पाणा
पव्वहिया, पडिलेहाए नो'निकरणाए, एस परिन्ना पवुच्चइ
कम्मोवसन्ती । से तं संबुज्जमाणे आयाणीयं. समुट्ठाय तम्हा
पावकम्मं नेव कुज्जा न कारवेज्जा । (२:८०,९६-७)

सब जीवों को आयुष्य और सुख प्रिय है, तथा दुःख और वध, अप्रिय और प्रतिकूल है। वे जीवन की इच्छा रखने वाले और इसको प्रिय मानने वाले हैं। सबको ही जीवन प्रिय है। प्रमाद के कारण अब तक जीवों को जो दुःख दिया है, उसको बराबर समझ कर, फिर न करे, इसीका नाम सच्चा विवेक है। और यही कर्मों की उप-शांति है। भगवान के इसे उपदेश को समझने वाला और सत्य के लिये प्रयत्नशील मनुष्य किसी पापकर्म को नहीं करता और न कराता है।

से मेहावी जे अणुग्धायणस्स खेयन्ने, जे य बन्धपमो-
कखमन्नेसी (२: १०२)

जो अहिंसा में बुद्धिमान है और जो बंध से मुक्ति प्राप्त करने में प्रयत्नशील है, वही सच्चा बुद्धिमान है।

जे पमत्ते गुणट्ठिए, से हु दण्डे पवुच्चइ; तं परिन्नाय
मेहावी, 'इयाणिं नो जमहं पुच्चमकासी पमाएणं' (१:३४-६)

प्रमाद और उससे होने वाली काम लोगों में आसक्ति ही हिंसा है। इस लिये, बुद्धिमान ऐसा निश्चय करे कि, प्रमाद से मैंने जो पहिले किया, उसे आगे नहीं करूँ।

पहू य एजस्स दुगुञ्छणाए । आर्यकदंसी 'अहियं'
ति नच्चा ॥ जे अज्झत्थं जाणइ, से वहिया जाणइ; जे
वहिया जाणइ, से अज्झत्थं जाणइ; एयं तुल्लं अन्नेसिं । इह
सन्तिगया दविया : नावकंखन्ति जीविउं । (१:५९-७)

जो मनुष्य विविध जीवों की हिंसा में अपना अणिष्ट देख सकता है, वही उसका त्याग करने में समर्थ हो सकता है।

जो मनुष्य अपना दुःख जानता है, वही बाहर के का दुःख जानता है; और जो बाहर के का दुःख जानता है, वही अपना भी दुःख जानता है । शांति को प्राप्त हुए सयमी दूसरे की हिंसा करके जीना नहीं चाहते ।

से वेमि-ने' व सयं लोगं अब्भाइक्खेज्जा, नेव अत्ताणं अब्भाइक्खेज्जा । जे लोगं अब्भाइक्खइ, से अत्ताणं अब्भाइक्खइ, जे अत्ताणं अब्भाइक्खइ, से लोगं अब्भाइक्खइ ।
(१: २२)

मनुष्य दूसरो के सम्बन्ध में असावधान न रहे । जो दूसरो के सम्बन्ध में असावधान रहता है, वह अपने सम्बन्ध में भी असावधान रहता है; और जो अपने सम्बन्ध में असावधान रहता है, वह दूसरों के सम्बन्ध में भी असावधान रहता है ।

जे गुणे से आवट्ठे जे आवट्ठे से गुणे; उड्ढं अहं तिरियं पाईणं पासमाणे रुवाइं पासइ, सुणमाणे सदाइं, सुणहं; उड्ढं अहं तिरियं पाईणं मुच्छमाणे रुवेसु मुच्छइ सदेसु यावि । एत्थ अगुत्त अणाणाए । एस लोए वियाहिए पुणो पुणो गुणासाए वंकसमायारे पमत्ते मारमावसे । (१:४०-४)

हिंसा के मूल होने के कारण कामभोग ही संसार में भटकते हैं संसार में भटकना ही काम भोगो का दूसरा नाम है । चारो ओर अनेक प्रकारके रूप देखकर और शब्द सुन कर मनुष्य उनसे आसक्त होता है । इसी का नाम संसार है । ऐसा मनुष्य महापुरुषो के बताए हुए मार्ग पर नहीं चल सकता, परन्तु बार बार कामभोगो में फस कर हिंसा आदि वक्रप्रवृत्तियो को करता हुआ घर में ही मुर्छित रहता है ।

जे पज्जवजायसत्थस्स खेयन्ने से असत्थस्स खेयन्ने;

जे असत्थस्स खेयन्ने से पज्जवजायसत्थस्स । खेयन्ने ।

(३: १०९)

जो मनुष्य शब्द आदि काम भोगों से होनेवाली हिंसा को जानने में कुशल है, वही अहिंसा को जानने में कुशल है; और जो अहिंसा को जानने में कुशल है, वही शब्द आदि कामभोगों को होनेवाली हिंसा से जानने में कुशल है ।

संसयं परिजाणओ संसारे परिन्नाए भवइ, संसयं अपरिजाणओ संसारे अपरिन्नाए भवइ (५: १४३)

विषयों के स्वरूप को जो बराबर जानता है, वही संसार को बराबर जानता है, और जो विषयों के स्वरूप को नहीं जानता, वह संसार के स्वरूप को भी नहीं जानता ।

से सुयं च मे अज्झत्थं च मे ।

वन्धप्पमोक्खो तुज्झत्थेव ॥ (५: १९०)

से सुपाडिबुद्धं सूवणीयं ति नच्चा पुरिसा । परमचक्खू विप्परक्कम एएसु चेव वम्भचेरं ! ति वेमि ।

मैंने सुना है और अनुभव किया है कि बन्धन से छूटना तेरे अपने ही हाथ में है । इसलिए, ज्ञानियों के पाससे ज्ञान प्राप्त करके, हे परमचक्रु वाले पुरुष ! तू पराक्रम कर, इमी का नाम ब्रह्मचर्य है, ऐसा मैं कहता हूँ ।

इमेण चैव जुज्झाहि किं ते जुज्झेण बज्झओ ? जुद्धा-
रिहं खलु दुल्लभं । (९: १५३)

हे पुरुष ! तू अपने साथ ही युद्ध कर, बाहर युद्ध करने से क्या ? इसके समान युद्ध के योग्य दूसरी वस्तु मिलना दुर्लभ है ।

पुरिसा ! तुममेव तुमं-मित्तं, किं वहिया मित्तमि
च्छसी ? पुरिसा ! अत्ताणमेव अभिनिगिज्झ, एवं दुक्खा
पमोकखसि । (३ : ११७-८)

हे पुरुष ! तू ही तेरा मित्र है बाहर क्यों मित्र खोजता है ?
अपने को ही वश में रख तो सब दुःखों से मुक्त हो सकेगा ।

सव्वओ पमत्तस्स भयं, सव्वओ अप्पमत्तस्स नत्थि
भयं । (३ : १७३)

प्रमादी को सब प्रकार से भय है, अप्रमादी को किसी प्रकार
भय नहीं है,

तं आइत्तु न निहे, न निविखवे, जाणित्तु धम्मं जहा-
तहा । दिट्ठेहिं निव्वेयं गच्छेज्जा, नो लोगस्से'सणं चरे ॥
(४ : १२७)

धर्म को ज्ञानी पुरुषों के पास से समझ कर, स्वीकार करके
संग्रह न कर रखे, परन्तु प्राप्त भोग-पदार्थों में वैराग्य धारण कर, लोक
प्रताह के अनुसार चलना छोड़ दे ।

इहारामं परिन्नाय अल्लीण-गुणो परिव्वए । निट्ठियट्ठि
वीरे आगमण सया परक्कमेज्जासि-त्ति वेमि । (५ : १६८)

संसार में जहाँ-तहाँ आराम है, ऐसा समझकर वहाँ से इन्द्रियों
को हटा कर सयमी पुरुष जितेन्द्रिय होकर विचरे । जो अपने कार्य
करना चाहते हैं, वे वीर पुरुष हमेशा ज्ञानी के कहे अनुसार पराक्रम
करे, ऐसा मैं कहता हूँ ।

कायस्स विओवाए एस संगामसीसे विथाहिए । स हु
पारंगमे षुणी । अविहम्ममाणे फलगावयट्ठी कालो
वणीए कंखेज्ज जाव सरीरमेओ-त्ति वेमि ॥ (६ : १९६)

संयमी अपने अन्त समय तक युद्ध में आगे रहने वाले वीर के समान होता है। ऐसा मुनि ही पारगामी हो सकता है। किसी भी प्रकार के कष्ट से न घबराने वाला और अनेक दुःखों के आने पर भी पाट के समान स्थिर रहने वाला वह संयमी शरीर के अन्त तक काल की राह देखे पर घबरा कर पीड़े न हटे; ऐसा मैं कहता हूँ।

न सक्ता फाममवेएउं फासि सयभागयं । रागदोसा उ जे तत्थ, ते भिक्खू परिव्वए । (अ० १६)

इन्द्रियो के सम्बन्ध में आने वाले विषयको अनुभव न करना गन्ध नहीं है, परन्तु उसमें जो रागद्वेष है, उसको भिक्षु त्याग दे।

उद्देशो पासगस्स नत्थि । कुसले पुण नो वद्धे नो मुक्के । से ज्जं च आरभे जंच नारभे । अणारद्धं च नारभे । छणं छणं परिन्नाय लोगसन्नं च सव्वसो । (२ : १०३)

जो ज्ञानी है उनके लिये कोई उपदेश नहीं है। कुशल पुरुष बुद्ध करे या न करे, उससे वह बद्ध भी नहीं है और मुक्त भी नहीं है। तां भी लोक रुचि को बराबर समझ कर और समय को पहिचान कर वह कुशल पुरुष पूर्व के महापुरुषों के न किये हुए कर्मों को नहीं करता।

जमिणं अन्नमन्न-विङ्गिच्छाए पडिलेहाए न करेइ पावं कम्मं किं तत्थ, सुणी कारण सिया ? समय तत्थु'वे-हाए अप्पाणं विप्पसायए । (३ : ११५)

एक-दूसरे की लज्जा या भय से पाप न करने वाला क्या मुनि है ? सच्चा मुनि तो समता को समझ कर अपनी आत्मा को निर्मल करने वाला होता है।

अणगारे, उज्जुकडे नियागपडिवान्ने, अमायं कुव्व-माणे वियाहिए । जाए सद्धाए निक्खन्तो, तमेव अणुपालिया; वियहिच्चु विसात्थियं पणया वीरा महावीहि । (१ : १८-२०)

जो सरल है, मुसुद्ध है, और अदंभी है, वही सच्चा अनगार है। जिस श्रद्धा से मनुष्य गृहत्याग करता है, इन्हीं श्रद्धा की आशंका और आत्मिकी को त्याग कर, सदा स्थिर रखना चाहिये। वीर पुरुष इसी मार्ग पर चलते आये हैं।

उवंहमाणे कुसलेहिं संवसे, अकंतदुःखी तसथावरा दुर्हा।
अलृसएं सन्वसहे महाशुणी, तथा दि से सुस्समणे समाहिए ॥

सुख दुःख में समभाव रखकर ज्ञानी पुरुषों की संगति में रहे, और अनेक प्रकार के दुःखों से दुःखी त्रय न्यावर जीवों को अपनी किसी क्रिया से परित्याग न दे। ऐसा करने वाला, पृथ्वी के समान सब कुछ सहन करने वाला महाशुनि उत्तम श्रमण कहलाता है। (अ० १६)

विउ नए धम्मपयं अणुत्तरं, विणीयतण्हस्स मुणिस्स झायथा।
समाहियस्सग्गिमिहा व तेयसा, तत्रो य पन्ना य जसो य वड्ढइ॥

उत्तम धर्म-पद का आचरण करने वाला, तृष्णारहित, ध्यान और समाधि से युक्त और अग्नि की ज्वाला के समान तेजस्वी विद्वान् भिक्षु के तप, प्रज्ञा और यश वृद्धि को प्राप्त होते हैं। (अ० १६)

तहा विमुक्कस्स परिन्नचारिणो, धिईमओ दुक्खखमस्स भिक्खुणो।
विसुज्झई जसि मलं पुरेकडं, ममीरियं रूपमलं व जोइणा ॥

इस प्रकार कामभोगों से मुक्त रह कर, विवेक पूर्वक आचरण करने वाले उस दृष्टिमान और सहनशील भिक्षु के पहिले किये हुए सब पापकर्म अग्नि से चादी का मैल जैसे दूर हो जाता है, वैसे ही दूर हो जाते हैं। (अ० १६)

इमंमि लोए परए य दोसुवि, न विज्जई वंधण जस्स किंचिवि।
से हु निरालं वणमप्पइट्ठिए, कलंकलीभावपहं विमुच्चई॥ चिवोमि॥

इस लोक और परलोक दोनों में जिसको कोई बन्धन नहीं है, और जो पदार्थों की आकांक्षा से रहित 'निरालम्ब' और अप्रतिबद्ध है, वही गर्भ में आने-जाने से मुक्त होता है, ऐसा मैं कहता हूँ। (अ० १६)

